दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

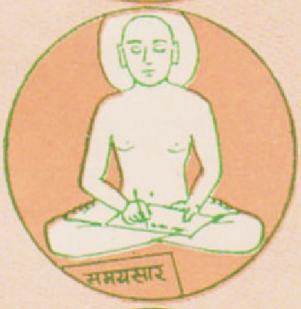

कहा रच्यौ परपद में,
न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होऊ सुखी स्वपद रचि,
दाव मत चूकौ यहै॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक १ [३८५] जुलाई, १९७७

आत्मधर्म [३८५]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ चेतन अपनो रूप निहारो
२ श्री टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय
३ संपादकीय [आत्मधर्म : एक वर्ष]
४ तीन भुवन में सार [परमात्मप्रकाश प्रवचन]
५ भूतार्थ और अभूतार्थ [समयसार प्रवचन]
६ नियम और नियमसार [नियमसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

हे जीव ! तूने आत्मा को भूलकर देहदृष्टि से तो अनंत जीवन व्यतीत किये हैं और उसके बाद भी तेरा भवभ्रमण का दुःख तो बना ही रहा। इसलिए अब सत्पुरुषों की आज्ञा में आत्मदृष्टिपूर्वक एक बार तो ऐसा जीवन व्यतीतकर कि जिसके बाद फिर भव ही धारण न करना पड़े।

- पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३८५] अंक : १

चेतन अपनो रूप निहारो,
नहिं गोरो नहिं कारो।
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरति,
सकल करम तें न्यारो॥१॥
जाकी बिन पहिचान जगत में,
सह्यो महा दुख भारो।
जाके लखे उदै ह्वै ततक्षण,
केवलज्ञान उजारो॥२॥
करम जनित परजाय पाय,
तुम कीनो तहाँ पसारो।
आपा पर सरूप न पिछानो,
तातें मौ उरझारो॥३॥
अब निज में निज को अवलोक्यो,
ज्यों ह्वै सब सुरझारो।
'जगतराम' सब विधि सुखसागर,
पद पावो अविकारो॥४॥

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का उद्घाटन

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का उद्घाटन सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान् सेठ साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन द्वारा दिनांक २४-७-७७ को श्री टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर, जयपुर में श्रीमान् पंडित लालचंदभाई अमरचंद मोदी की अध्यक्षता में होने जा रहा है। राजस्थान राज्य के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत मुख्य अतिथि, एवं उद्योगमंत्री श्री त्रिलोकचंद जैन विशेष अतिथि होंगे।

इस अवसर पर विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, श्री युगलजी कोटा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित जवाहरलालजी विदिशा, पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री 'हितैषी' दिल्ली, ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर शिरपुर, ब्रह्मचारी सेठ रावजीभाई फलटन आदि अनेक गणमान्य विद्वान एवं श्री सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, श्री सेठ पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, श्री सेठ शांतिभाई जवेरी बम्बई, श्री सेठ माणिकलाल आर० गाँधी बम्बई, श्री सेठ राजेन्द्रकुमारजी विदिशा, श्री सेठ पदमचंदजी आगरा आदि श्रीमान् पधारेंगे।

महाविद्यालय के साथ उसका छात्रावास और भोजनालय भी रहेगा। आवास और भोजन की समुचित व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने के लिये वर्ष भर तक निरंतर विद्वानों के प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि की व्यवस्था भी रहेगी।

विद्वानों के प्रवचन और चर्चा से स्थानीय व्यक्ति तो लाभ लेंगे ही, बाहर से भी आत्मार्थी बंधुओं के पधारने की संभावना है; अतः उनके आवास और भोजन (सशुल्क) की व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया है, पर यह व्यवस्था पूर्वसूचना प्राप्त होने पर ही संभव हो सकेगी।

इस वर्ष के लिये जिन प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ताओं ने स्वीकृति प्रदान की है, उनकी तिथिवार सूची निम्नानुसार है:-

दिनांक २४ जुलाई १९७७ से दिनांक ७ अगस्त १९७७ तक

१. श्री पंडित लालचंदभाई मोदी, बम्बई
२. श्री पंडित धन्यकुमारजी बेलोकर, शिरपुर
३. श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली
४. श्री पंडित हीरालाल भीखाभाई, सोनगढ़

दिनांक ८ अगस्त १९७७ से दिनांक २७ अगस्त १९७७ तक

१. श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा
२. श्री पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा
३. श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री, कोटा
४. श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली

दिनांक २८ अगस्त १९७७ से दिनांक ३० सितम्बर १९७७ तक

सभी विद्यार्थीगण सोनगढ़ प्रवचनकार-शिक्षण शिविर में भाग लेने जावेंगे तथा प्रवचनकार-विद्यार्थी पर्यूषण में प्रवचन के लिये जावेंगे।

दिनांक १ अक्टूबर १९७७ से दिनांक २० अक्टूबर १९७७ तक

सभी विद्यार्थीगण अनुपस्थिति के समय पढ़ाई की क्षतिपूर्ति करेंगे।

दिनांक २१ अक्टूबर १९७७ से दिनांक ८ नवम्बर १९७७ तक

१. श्री पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर
२. श्री पंडित रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा
३. श्री पंडित जवाहरलालजी, विदिशा
४. श्री पंडित अभयकुमारजी, जबलपुर

दिनांक ९ नवम्बर १९७७ से दिनांक १४ नवम्बर १९७७ तक

दीपावली उत्सव

दिनांक १५ नवम्बर १९७७ से दिनांक १५ दिसम्बर १९७७ तक

१. श्री पंडित खीमचंदभाई, सोनगढ़
२. श्री पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा
३. श्री पंडित राजमलजी जैन, भोपाल
४. श्री पंडित धन्यकुमारजी बेलोकर, शिरपुर

दिनांक १६ दिसम्बर १९७७ से दिनांक १५ जनवरी १९७८ तक

१. श्री सिद्धांत शास्त्री पंडित फूलचंदजी, वाराणसी
२. श्री पंडित शशीभाई सेठ, भावनगर
३. श्री पंडित उत्तमचंदजी, सिवनी
४. श्री पंडित नेमीचंदजी पाटनी, आगरा

दिनांक १६ जनवरी १९७८ से दिनांक ३१ जनवरी १९७८ तक

१. श्री पंडित हिम्मतभाई जोबालिया, सोनगढ़
२. श्री पंडित नेमीचंदभाई, रखियाल
३. श्री पंडित डालचंदजी सर्राफ, भोपाल
४. श्री पंडित कन्नूभाई, दाहौद

दिनांक १ फरवरी १९७८ से दिनांक ३० अप्रेल १९७८ तक

विद्यार्थीगण फरवरी में होनेवाली परीक्षाओं की तथा उसके बाद राजस्थान महाविद्यालय की परीक्षा की तैयारी करेंगे।

दिनांक १ मई १९७८ से दिनांक ३० जून १९७८ तक

ग्रीष्मकालीन अवकाश

नोट – उपरोक्त विद्वानों के अतिरिक्त श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ निरंतर मिलता ही रहेगा।

सभी आत्मार्थी बंधुओं से लाभ लेने का पूरा–पूरा अनुरोध है। पधारने की सूचना १० दिन पहले अवश्य देने की कृपा करें ताकि समुचित व्यवस्था की जा सके।

– मंत्री, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय

सम्पादकीय

आत्मधर्म

एक वर्ष

यद्यपि पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के आत्मा को स्पर्श करनेवाले प्रवचनों का लाभ अध्यात्मप्रेमी पाठकगण आत्मधर्म के माध्यम से हिन्दी भाषा में गत ३२ वर्ष से ले रहे हैं, तथापि आत्मधर्म के तत्त्वप्रेमी पाठकों से मेरा सीधा संपर्क गत एक वर्ष से ही हुआ है।

इस एक वर्ष के संपर्क में जो अगाध प्रेम पाठकों से प्राप्त हुआ है, उससे मुझे बहुत बल मिला है एवं मेरे उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। स्नेही पाठकों से मुझे समय-समय पर सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए हैं; जिनमें गुरुदेव के प्रति तो अनंत श्रद्धा व्यक्त की ही गयी है, मेरे प्रति भी असीम स्नेह प्रदर्शित किया गया है। समय-समय पर पूज्य गुरुदेव से लिये गये इंटरव्यू एवं दशधर्मों पर लिखे गये लेखों को भी पाठकों ने खूब सराहा है।

इसकी ग्राहक संख्या का एकदम बढ़ जाना भी पाठकों के हार्दिक स्नेह को सूचित करता है। एक वर्ष पहिले इसकी ग्राहक संख्या कुल दो हजार थी और स्थायी ग्राहक भी कुल दो सौ ही थे। आज यह आठ हजार छप रहा है और स्थायी ग्राहक भी एक हजार साठ हैं। एक वर्ष के भीतर ग्राहक संख्या चौगुनी एवं स्थायी ग्राहक पाँच गुने से भी अधिक हो जाना अपने आप में अपूर्व उपलब्धि है।

हिन्दी आत्मधर्म की बढ़ती लोकप्रियता से उत्साहित होकर श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बम्बई ने मराठी में एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बैंगलोर ने कन्नड़ में इसका प्रकाशन करने का निर्णय लिया है। उक्त दोनों भाषाओं में भी आत्मधर्म का प्रकाशन हिन्दी आत्मधर्म के आधार पर इसी माह से आरंभ हो जायेगा। गुजराती में तो हिन्दी से पहिले से ही इसका प्रकाशन हो रहा है। इसप्रकार अब यह पत्र चार भाषाओं और लगभग पन्द्रह हजार प्रतियों में प्रति माह प्रकाशित होगा।

यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यह असीम स्नेह मुझे गुरुदेव की अभूतपूर्व तत्त्व को प्रतिपादन करनेवाली वाणी को सरल भाषा और सुबोध शैली में आप तक पहुँचाने के कारण ही मिला है। मैं तो गुरुदेवरूपी पारस को स्पर्श करने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ। मूल माल तो उन्हीं का है।

आत्मधर्म के प्रति मेरा सहज आकर्षण गत इक्कीस वर्षों से रहा है। सन् १९५६ में जब सर्वप्रथम मुझे आत्मधर्म के क्रमबद्धपर्याय संबंधी अंक प्राप्त हुए और मैंने उन्हें पढ़ा तो एकदम झंकृत हो उठा। उन्हें मैंने एक बार नहीं, अनेक बार पढ़ा। उनमें जो मुझे अभूतपूर्व वस्तुतत्त्व मिला, उसने मेरा जीवन ही बदल डाला।

मैं ही नहीं, मेरे अग्रज पंडित रतनचंदजी शास्त्री भी आंदोलित हो उठे। यद्यपि उस समय भी हम दोनों भाई शास्त्री-न्यायतीर्थ थे, जैन शास्त्रों का अध्ययन भी खूब किया था, प्रवचन भी करते थे; पर जिनवाणी का मूलतत्त्व हमारे हाथ नहीं लगा था, यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं है।

जब आत्मधर्म के माध्यम से क्रमबद्धपर्याय की बात हाथ आ गयी तब से जिनागम के अध्ययन, मनन, चिंतन की गति तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम होती गयी। गुरुदेव से साक्षात् समागम भी हुआ। फलस्वरूप जीवनधारा ही बदल गयी।

आत्मधर्म ने हमारी जीवनधारा बदली है और न जाने कितने लोगों को भी इसी प्रकार इसने तत्त्व की ओर मोड़ा होगा। यही एकमात्र कारण रहा है आत्मधर्म के प्रति मेरे सहज आकर्षण का।

मैं चाहता हूँ कि आत्मधर्म असीम काल तक आत्मा की बात जन-जन तक पहुँचाता रहे और असंख्य प्राणी इसके माध्यम से भोगोन्मुखी वृत्ति को छोड़कर आत्मोन्मुखी बनते रहें।

आत्मधर्म की अपनी एक मर्यादा है जिसे इसके आद्य संपादक परम सम्माननीय विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई ने स्थापित की थी। उस मर्यादा को मैंने पूरी तरह ध्यान में रखा है व उसमें रहकर ही इसे सर्वजन बोधगम्य एवं आकर्षक बनाने का यत्न किया है।

इसका संपादन-कार्य हाथ में आते ही बहुत से बंधुओं के लेख, कविताएँ आने लगीं

तथा लौकिक समाचार भी बहुत आने लगे। इसकी मर्यादा एवं गरिमा को ध्यान में रखकर मैं उन्हें प्रकाशित नहीं कर सका हूँ। इस कारण जिन बंधुओं को ठेस पहुँची हो, उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस वर्ष सामाजिक वातावरण में भी एक उफान आया था। उफान ही क्या, इसे यदि तूफान भी कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यद्यपि इस तूफान और अंधड़ का शिकार आत्मार्थी समाज ही अधिक हुआ, तथापि आत्मधर्म ने अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी। वह इस भयंकर तूफान में भी मेरुवत् अडिग एवं सागरवत् गंभीर बना रहा।

जिनवाणी के जलप्रवाह, अग्निदाह, अपमान के विरुद्ध सैकड़ों अपीलें, प्रस्ताव आये। उन सबसे भी इसे अलग रखना कठिन काम था, क्योंकि वे सब हितैषियों द्वारा ही संप्रेषित थे। पर इस त्रैकालिकतत्त्व को प्रतिपादन करनेवाली आध्यात्मिक पत्रिका को तात्कालिक विषयों में उलझाना उचित नहीं लगा। आन्तरिक दबावों को भी सहकर इसके त्रैकालिकरूप को सुरक्षित रखने में जिन बंधुओं को कुछ असुविधा अनुभव हुई हो, उनसे भी क्षमाप्रार्थी हूँ।

संपादकीय लेखों के विषय-चयन में भी पूरी सावधानी रखी है। उनके विषय सामाजिक न रखकर शुद्ध सैद्धांतिक और आध्यात्मिक रखे गये हैं। यद्यपि मेरा हृदय भी वर्तमान अशोभनीय घटनाओं से आंदोलित रहा है, तथापि उसकी छाया भी इस पत्रिका पर नहीं पड़ने दी गयी है।

मुझ हीनबुद्धि से इस महान पत्रिका के स्तर में कहीं कोई गिरावट न आ जावे - इसकी सावधानी मुझे सदा रही है। गुरुदेव के मंगल-प्रसाद से इस तूफान वर्ष में भी यह मर्यादा निभ गयी है तो मुझे विश्वास हो चला है कि आगे भी निभ जायेगी।

इसके संपादन में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि त्रैकालिकतत्त्व का प्रतिपादन भी इसप्रकार हो कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में वह समस्त समाज को हितकारी एवं शांतिदायक रहे। इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय मैं शांतिकामी सजग पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

बहुत से पाठकों के आग्रह रहे हैं कि बाल विभाग, महिला विभाग आदि स्तंभ आरंभ किये जावें। बहुतों ने यह भी चाहा है कि स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के लेख भी रहें, पर यह संभव नहीं रहा - क्योंकि संपादकीय, समाचार, आवश्यक सूचनाएँ आदि को छोड़कर

गुरुदेव के प्रवचनों के २०-२२ पृष्ठ ही रह पाते हैं। उनके उपदेशामृत को और कम करना किसी हालत में संभव नहीं है। यदि बाल स्तंभ आदि आरंभ किये जाते हैं तो वे अन्य लोगों से ही लिखाने होंगे या स्वयं लिखने होंगे जो गुरुदेव की वाणी के पृष्ठों को और अधिक कम करेंगे।

कुछ पाठकों का आग्रह इसे कुछ मनोरंजक बनाने का भी रहा है। पर इस पत्र का संबंध स्वामीजी से जुड़ा हुआ है। उनके गुरु-गंभीर व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिये मुझे इसका गंभीर तात्त्विकरूप ही उपादेय लगता है। इस पत्र में मैं एक शब्द भी ऐसा नहीं देना चाहता जो गुरुदेव की गरिमा को कम करे। आशा है, पाठकगण भी मेरी भावना से सहमत होंगे।

वैसे तो समाज में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, पर यह अपनी रूपरेखा में एक ही है। इसका यही रूप बनाये रखना मुझे इष्ट और आवश्यक प्रतीत होता है।

मर्यादा में रहते हुए इसे और जितना भी आकर्षक, सहज, सरल और लोकप्रिय बनाया जा सकेगा, बनाने का प्रयत्न सदा रहेगा।

पाठकों एवं हितैषी बंधुओं के सुझावों और सराहना से बल तो मिलता ही है, साथ ही मार्गदर्शन भी प्राप्त होता है। अतः उनका सदा स्वागत है। पर एक बात अवश्य है कि समस्त भावनाओं और सुझावों को क्रियान्वित करना संभव नहीं रहता। फिर भी मैं इतना विश्वास अवश्य दिलाना चाहता हूँ कि सुझावों पर गंभीरता से विचार अवश्य किया जाता है तथा सीमा के भीतर क्रियान्विति के लिये प्रयत्न भी किया जाता है।

इसकी छपाई-सफाई, गेटअप आदि की सुंदरता के संबंध में भी पाठकों ने इसकी सराहना की है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। सारा श्रेय भाई श्री सोहनलालजी जैन एवं श्री राजमलजी जैन, जयपुर प्रिंटर्स, जयपुर को है, जिनके सद्प्रयत्नों से यह इतने अच्छे रूप में निकल रहा है। विशेषकर शुद्धता का श्रेय श्री राजमलजी जैन को ही है। उनके अभूतपूर्व सहयोग और श्रम के बिना यह संभव नहीं था।

साथ ही श्री वैद्य गंभीरचंदजी अलीगंज, श्री अभयकुमारजी जबलपुर, एव श्री स्वतंत्रजी बासौदा ने स्वामीजी के प्रवचनों का गुजराती से हिंदी अनुवाद करने में जो सहयोग समय-समय पर दिया है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता।

इसकी व्यवस्था की भी चिंता थी। श्री नेमीचंदजी पाटनी के निर्देशन में प्रबंध-संपादक श्री अखिल बंसल ने इसे अच्छी तरह संभाल लिया है।

अंत में आदरणीय श्री बाबूभाई आदि उन सभी विद्वानों और श्रीमानों को इस अवसर पर स्मरण किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने प्रेरणा और आर्थिक सहयोग द्वारा इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने में भरपूर सहयोग दिया है। यद्यपि सबका नामोल्लेख संभव नहीं है, तथापि वे मेरे स्मृतिपटल पर अच्छी तरह अंकित हैं।

इस अवसर पर उन सब तत्त्वप्रेमी पाठकों को कैसे भूला जा सकता है जो प्रत्येक माह के प्रथम सप्ताह में बड़ी ही बेताबी से इसकी प्रतीक्षा करते हैं और प्राप्त होते ही इसे अनेक बार आद्योपान्त पढ़ते हैं, प्रियजनों को पढ़ने की प्रेरणा देते हैं, समय-समय पर समुचित सुझाव देते हैं, प्रेरणा देते हैं, उत्साह बढ़ाते हैं, और इसे अधिक से अधिक लोकप्रिय बनाने के उपाय सुझाते हैं।

आत्मधर्म जो कुछ भी है, जैसा भी है; आपके सामने है। यह सब किसी एक व्यक्ति का काम नहीं है। यह हजारों आत्मार्थियों की भावनाओं एवं सैकड़ों कर्मठ व्यक्तियों के सक्रिय योगदान का प्रतिफल है।

यह गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का संदेशवाहक है, जो प्रतिमास आपके पास पहुँचकर उनके आध्यात्मिक संदेशों को आप तक पहुँचाता है।

उनके संदेशों को जानना, मानना और जीवन में उतारना आपके हाथ है।

यदि गुरुदेव का मंगल आशीर्वाद और आप सबका ऐसा ही अपूर्व सहयोग प्राप्त होता रहा तो मैं आगे भी दूने उत्साह के साथ गुरुदेव द्वारा प्रकट किये गये जिनागम के रहस्य को आप तक पहुँचाता रहूँगा।

तत्त्वप्रेमी पाठकों से समुचित मार्गदर्शन की अपेक्षा के साथ विराम लेता हूँ।

अपना आत्मधर्म स्वयं पढ़िये और पड़ौसियों को पढ़ाइये

तीन भुवन में सार

परम पूज्य मुनिराज योगीन्दुदेव के ग्रंथराज 'परमात्मप्रकाश' के प्रथम अध्याय के दोहा नं० ९६ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत प्रवचन का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल दोहा इसप्रकार है—

अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु।
एक्कु जि जोइय झाइयइ जो तहलोयहँ सारु ॥९६॥

केवल आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, दूसरा सब व्यवहार है। इसलिये हे योगी! एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है, जो कि तीन लोक में सार है।

सहजात्मस्वरूप के सन्मुख होकर जो दशा प्रकट हो, वह आत्मा है। आत्मा के आश्रय से जो दशा उत्पन्न हो, वह आत्मा है और अनात्मा के आश्रय से जो दशा उत्पन्न हो, वह अनात्मा है। आत्मा के आश्रय से जो आत्मा की दृष्टि उत्पन्न हुई वह आत्मा है, अन्य सर्व व्यवहार है-अनात्मा है। सम्यग्दर्शन वह विशेष है। विशेष ने सामान्य का आश्रय लिया इसलिये वह आत्मा है। इसके अतिरिक्त अन्य सर्व देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का विकल्प अथवा शास्त्र-स्वाध्याय का विकल्प, वह सभी अनात्मा है, व्यवहार है; क्योंकि उसमें आत्मा का आश्रय नहीं है।

विकल्प से रिक्त और अनंत-अनंत स्वभाव से भरपूर, वर्तमान पर्याय से खाली और अनंत आनंद से परिपूर्ण, अखूट केवलज्ञानादि पर्यायों का भंडार—ऐसा भगवान तू स्वयं है। जिसमें पर के साथ स्नेह-संबंध नहीं तथा राग का संबंध भी नहीं—ऐसा तू है।

जिसने निमित्त का अथवा पर का आश्रय किया है, वह अनात्मा है। भगवान पूर्णानंद का नाथ है। उसका जिसने आश्रय लिया, वही आत्मा है तथा अन्य सर्व, अरे! वीतरागी देव की श्रद्धा भी अनात्मा है, व्यवहार है। अनात्मा से आत्मा कैसे प्राप्त हो? देव-गुरु-शास्त्र की पूजा-भक्ति, व्रत-दया-दान आदि सर्वभाव व्यवहार हैं-अनात्मा हैं। अरे! तीर्थंकर गोत्र जिस भाव से बँधता है, वह भाव भी व्यवहार है, अनात्मा है।

जिसने वर्तमान पर्याय को राग के साथ जोड़ दिया है, वह अयोगी है अर्थात् वह योगी

नहीं है, किंतु भ्रष्ट है। जिसने वर्तमान पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया है, वही योगी है। हे योगी! आत्मा के आश्रय से प्रकट हुई दशा ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त अन्य सर्व भाव अनात्मा हैं, व्यवहार हैं। अत: हे योगी! एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है और वह एक ही अर्थात् मात्र वही तीन लोक में सारभूत है।

हे आत्मन! तू परद्रव्य के प्रपंच में क्यों फँस गया है? अरे! एक वीतरागी निश्चय रत्नत्रय ही इष्ट है, शेष तो सभी अनिष्ट हैं। अत: अपने लक्ष्य को बदल दे। पर की ओर का लक्ष्य छोड़कर स्वतरफ लक्ष्य को-दृष्टि को मोड़। जब तक पर का, निमित्त का, विकल्प का प्रेम है, तब तक आत्मा पर द्वेष है। अरे जीव! भाग्य बिना ऐसी परम सत्य मांगलिक बात सुनने को भी कैसे मिले? न मिले। भगवान तुझसे कहते हैं कि प्रभु! तू स्वसन्मुख देख तो जरा! वहाँ सुख का भंडार लबालब भरा है। [लक्ष्मी तेरे मस्तक पर तिलक करने आवे और उस समय तू मुँह धोने चला जावे तो तेरे अभाग्य की महिमा क्या कही जाये?]

अरे भाई! यह वाणी कर्णगोचर हुई, सुनने का अवसर आया। ऐसे अवसर पर पहले संसार का यह कार्य कर लूँ अथवा वह कार्य कर लूँ—ऐसा मत कहो, नहीं तो सुअवसर चला जायेगा और कभी भी वापस आयेगा नहीं। अत: पहले यही कार्य कर ले।

राग में प्रीति करनेवाले को निज परमात्मा का विरह पड़ गया है। भगवान आत्मा की रुचि के आगे इंद्र के भोग की भी रुचि उड़ जाती है। जिसे त्रिकाली प्रभु की दृष्टि बिना पर्याय की रुचि है, उसे बंध की रुचि है। राग से धर्म होता है ऐसी मान्यता से तुझे अपनी आत्मा का विरह पड़ गया है।

अबंधस्वभावी आत्मा का निश्चय—वह अबंधपरिणामी है, उससे बंधन कैसे हो? आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान, उसके सन्मुख होने पर उसका निश्चय होगा, वह सम्यग्दर्शन है। दु:ख से मुक्त होने का उपाय तो आत्मसन्मुख दृष्टि करना ही है।

निश्चय मोक्षमार्ग तो मोक्ष का कारण है—वह बंध का कारण कैसे हो सकता है? यहाँ कोई कहे कि उससे बंध तो होता है न? उससे कहते हैं कि निश्चय मोक्षमार्ग के साथ जो राग है, अर्थात् जो व्यवहार मोक्षमार्ग है, उससे बंध होता है। भावार्थ यह हुआ कि निश्चय मोक्षमार्ग मोक्ष का ही कारण है, वह बंध में अकिंचित्कर है। और व्यवहार मोक्षमार्ग बंध का ही कारण है, वह मोक्ष में अकिंचित्कर है।

भूतार्थ और अभूतार्थ

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की ग्यारहवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ है, और शुद्धनय भूतार्थ है; ऐसा ऋषीश्वरों ने बताया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु! अखंड आत्मा को समझने में ज्ञान में भेदरूप व्यवहार निमित्त होता है, तो उसे अंगीकार क्यों नहीं करना चाहिये? उसके उत्तर में आचार्यदेव यह ग्यारहवीं गाथा कहते हैं। यह गाथा अत्यंत शांति और धैर्य से समझने योग्य है। इसका भाव समझनेवाले के जन्म-मरण का अंत आ जाये—ऐसी यह गाथा है।

आत्मा का स्वभाव एकरूप अभेद है। व्यवहारनय भेद करके समझाता है। अशुद्धता और भेद अभूतार्थ है, स्थायी चीज नहीं। वर्तमान ज्ञान जिस भेद या अशुद्धता को बताता है, वह व्यवहारनय है। व्यवहारनय अभूतार्थ है, अभूत अर्थात् नहीं—ऐसे अर्थ को बतानेवाला होने से असत्यार्थ है। वस्तु में जो परमार्थवस्तुभूत नहीं ऐसे राग और भेद को बतानेवाला होने से व्यवहारनय असत्यार्थ है।

शुद्धनय वस्तु जैसी है, वैसी बतानेवाला होने से भूतार्थ है। अनंत गुण जिसमें हैं—ऐसी अभेद एकरूप त्रिकाली वस्तु ही सत्यार्थ है, वही भूतार्थ है, उसे शुद्धनय बताता है; अतः शुद्धनय का आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि है।

यह गाथा दृष्टि की प्रधानता से है। आत्मा एक समय में अनंत गुणों का पिण्ड है। उसमें विकल्प उठाने से, गुणभेद करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। प्रकट पर्याय को गौण करके

शक्तिरूप ध्रुवसामान्यस्वभाव के अवलंबन से सम्यग्दर्शन होता है। एक में अनेकता की वृत्ति उठाना अभूतार्थ है। पर्याय में भेद है, पर एकरूप स्वभाव में भेद नहीं; अत: भेद अभूतार्थ है।

अनादि से त्रिकाली ध्रुवज्ञायकभाव का अनादर करके राग का आदर किया है, यही महान हिंसा है। राग का आदर छोड़कर शुद्धनय का, त्रिकाली ज्ञायकभाव का आदर करना ही सच्ची अहिंसा है। वर्तमान ज्ञान की दशा राग की ओर झुकी है। वह दशा वहाँ से विमुख होकर त्रिकाली ज्ञायकभाव की ओर झुके, यही धर्म की शुरुआत है।

त्रिकाली अखंड वस्तु को भेद द्वारा बताना व्यवहार है। वह चार प्रकार का है:—

(१) उपचरित असद्भूतव्यवहार=ख्याल में आनेवाला राग।

(२) अनुपचरित असद्भूतव्यवहार=ख्याल में न आये ऐसा अबुद्धिपूर्वक राग।

(३) उपचरित सद्भूतव्यवहार=ज्ञान अपना होते हुए भी उसे पर को जाननेवाला, राग को जाननेवाला कहना।

(४) अनुपचरित सद्भूतव्यवहार=ज्ञान वह आत्मा—ऐसा भेद करना।

उपरोक्त समस्त व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। भगवान आत्मा अभेद एकरूप अखंड वस्तु है। उसे भेद करके जाननेवाला व्यवहार वह समस्त ही असत्यार्थ है, अभूतार्थ है; क्योंकि वह अविद्यमान—असत्य अर्थ को प्रकट करनेवाला है। त्रिकाली अभेद एकरूप ज्ञायकभाव का आश्रय करने के लिये व्यवहार समस्त ही असत्यार्थ है। निर्मल पर्याय और द्रव्य दोनों को साथ में लेना भी आश्रय करने के लिये असत्यार्थ है। स्वभाव और स्वभाववान अभेद हैं, उसकी दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है।

अभेद एकरूप आत्मा सत्यार्थ है। उसकी अपेक्षा चारों व्यवहारनय असत्यार्थ हैं; आदरणीय नहीं, जानने योग्य हैं। व्यवहारनय राग-ज्ञान आदि के भेद करके दिखाता है, जो कि अभेद त्रिकाली वस्तु में नहीं।

सम्यग्दर्शन के प्रयोजन की सिद्धि के लिये त्रिकाली को मुख्य करके, भेद को गौण करके वहाँ से दृष्टि हटाने के लिये उसे असत्यार्थ कहा है। पर्याय ध्रुवद्रव्य में है और उसे गौण किया है—ऐसा नहीं है। त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि कराने के लिये पर्याय को पर्याय में गौण करके असत्यार्थ कहा है, त्रिकाली में नहीं।

और पर्याय सर्वथा नहीं है, अत: उसे असत्यार्थ कहा है—ऐसा भी नहीं है। यह बहुत शांति से समझनेयोग्य बात है। त्रिकाली वस्तु को मुख्य करके उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। पर्याय में भेद होते हुए भी प्रयोजन की सिद्धि के लिये उसे गौण करके त्रिकाली अभेद को मुख्य करके सत्यार्थ कहकर उसका आश्रय कराया है और इससे सम्यग्दर्शन के प्रयोजन की सिद्धि होती है।

शुद्धनय एक ही भूतार्थ है, क्योंकि सत्य अर्थ को प्रकट करता है। शुद्धनय एक ही है। उसके शुद्धनय और अशुद्धनय ऐसे दो भेद नहीं हैं। वास्तव में तो अशुद्धनय भी भेद करता है, अत: व्यवहारनय ही है। आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित होता है, यह भी भेद-प्ररूपणा होने से अशुद्धनय का विषय है। अत: शुद्धनय एक ही भूतार्थ है।

पर्यायसहित द्रव्य को विषय करने से तो व्यवहार हो जाता है, जो कि असत्यार्थ है। त्रिकाली अभेद को जाननेवाला एक शुद्धनय ही है। पर्यायरहित त्रिकाली ध्रुवधाम ही एक सत्यार्थ है। शुद्धनय और उसका विषय त्रिकाली ज्ञायक ऐसे दो भेद भी ज्ञायक का आश्रय करनेवाले को नहीं रहते, इसलिये यहाँ शुद्धनय का विषय भूतार्थ है ऐसा न कहकर शुद्धनय को ही भूतार्थ कहा है। अब यह बात उदाहरण द्वारा समझाते हैं।

प्रबल कीचड़ मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव ढँक गया है, ऐसे जल का अनुभव करनेवाले बहुत से लोग जल और कीचड़ की भिन्नता का विवेक न होने से जल को मलिन ही अनुभव करते हैं। परंतु कुछ लोग जल और कीचड़ की भिन्नता का विवेक होने से, अपने पुरुषार्थ द्वारा उस जल में कतकफल डालकर, सहज एक निर्मल जल को प्रगट करके, उस जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं।

उसीप्रकार कर्म के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व कषाय आदि भावों के मिलने से आत्मा का सहज एक ज्ञायकभाव ढँक गया है, तिरोभूत हो गया है। राग में एकत्व के अहं की आड़ में निर्मल आनंद ज्ञायकभाव आच्छादित हो गया है। ज्ञायकभाव स्वभाव की अपेक्षा तो अनादि से जैसा का तैसा ही है। पर विकल्प में एकत्वरूप मिथ्यात्व के कारण वह सहजस्वभाव दृष्टि में नहीं आता। इसलिये ज्ञायकभाव को तिरोभूत कहा है।

जैसे, आँख की आड़ में एक उंगली करने पर सारा समुद्र नहीं दिखता, अत: देखनेवाले

के लिये समुद्र तिरोभूत कहा जाता है। नजर में नहीं आने से समुद्र तिरोभाव को प्राप्त है, पर समुद्र तो जैसा का तैसा है। उसीप्रकार ज्ञायकभाव तो स्वभाव से पूर्णानंद का नाथ त्रिकाली नित्यानंद प्रभु अनंत गुणों का पिंड अनादि से जैसा का तैसा ही है, वह तिरोभूत नहीं होता; पर जाननेवाले की दृष्टि में 'मैं रागादि हूँ' ऐसे मिथ्यात्व की आड़ में ज्ञायकभाव नजर नहीं आता, अत: उसे तिरोभूत कहा जाता है।

मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम क्या होना चाहिये ? उसका उत्तर यही है कि सर्वज्ञ के न्याय के अनुसार शुद्धात्मा की श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होते ही नहीं, अत: धर्म का प्रथम उपाय सम्यग्दर्शन ही है। जिसे इस गाथा में कहा है।

जिससे बंदूक पकड़ते न बने वह शत्रु के सामने आने पर क्या करेगा ? उसीप्रकार जिसे वर्तमान में सत् की रुचि, विवेक और सत्शास्त्र का अभ्यास नहीं; वह मरण के समय कैसे समभाव रखेगा ? जिसके प्रथम अनीति का त्याग न हो, लौकिक सज्जनता न हो, उसके लिये तो धर्म है ही नहीं।

मिथ्यात्व भाव से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव ढँक गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले व्यवहार से विमोहित हृदयवाले पुरुषों को आत्मा और रागादि की भिन्नता का विवेक न होने से, जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है, ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं। अर्थात् वे सहज एक ज्ञायकभाव का अनुभव न करते हुए आत्मा को रागादिवाला अनुभव करनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं।

परंतु भूतार्थदर्शी अर्थात् शुद्धनय से देखनेवालों को आत्मा और राग की भिन्नता का विवेक होने से वे अपने पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव-सम्मुख दृष्टि करने से, सहज एक ज्ञायकभावपने से जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशित है, ऐसे आत्मा को आविर्भूत करके, प्रगट करके, अनुभव करते हैं; वे धर्म का अनुभव करनेवाले सम्यग्दृष्टि हैं।

कीचड़ मिश्रित मलिनता होते हुए भी जो पहले से ही स्वच्छ जल का विश्वास करता है, उसे जल की सभी मलिनता टालने की दृष्टि पहिले से ही प्राप्त हुई है। मलिनता दूर करने में कदाचित् थोड़ा समय लगेगा परंतु एकरूप निर्मलता प्राप्त करने की रुचि मलिनता नहीं रहने देगी। जब तक पुण्य-पापभाव को ही आत्मा का स्वभाव मानता है, और शुभभाव से

गुण मानता है; तब तक निर्मल स्वभाव पर दृष्टि नहीं जाती और अशुद्धता दूर करने का वास्तविक उपाय नहीं सूझता। बंधमार्ग को मोक्षमार्ग मानकर अज्ञानी व्यवहार-व्यवहार करते हैं और व्यवहार को उपादेय मानकर उसी को पकड़ बैठे हैं। उन्हें आचार्यदेव व्यवहारमूढ़ कहते हैं।

जल के निर्मल स्वभाव की खबर न होने से अज्ञानी कीचड़ मिश्रित जल को मैला ही मानकर, मलिन जल को पीते हैं। जल का निर्मल स्वभाव जाननेवाले तो अपने हाथ से निर्मल औषधि डालकर अपने पुरुषार्थ द्वारा निर्मल जल का स्वाद लेते हैं। उसीप्रकार सहज ज्ञायकस्वरूप चैतन्यज्योति भगवान आत्मा अनादि से कर्म संयोग से ढँका होने से मलिन भासित होता है, कर्मों ने मैला नहीं किया, पर स्वयं विपरीत दृष्टि से अपने को रागादि का कर्ता मानकर उन विकार भावों को अपनाता है। ऐसा माननेवाला व्यवहारमूढ़ है, क्योंकि उसे स्वभाव की खबर नहीं है।

भूतार्थदर्शी को निर्मलता का विवेक होने से अपने पुरुषार्थ द्वारा ज्ञानज्योति से शुद्धनय के अनुसार बोध होता है, जिससे निर्मल ध्रुवस्वभाव का भान तथा आत्मा और कर्म की भिन्नता का ज्ञान होता है। सम्यग्दृष्टि अपने पुरुषार्थ द्वारा प्रकट किये गये सहज एक ज्ञायकस्वभाव को ही शुद्धनय द्वारा अनुभव करते हैं, यही सम्यग्दर्शन है।

इसप्रकार जो शुद्धनय अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत भूतार्थ त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं। पर जो अशुद्धनय का आश्रय करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। अतः कर्म और विकार से भिन्न आत्मा को देखनेवालों को व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं, मात्र शुद्धनय ही अनुसरण करने योग्य है।

यह ११वीं गाथा जैन दर्शन का प्राण है। यहाँ सम्यग्दर्शन का विषय बताया है। दो भाव हैं—एक वर्तमान पर्यायभाव और दूसरा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। वर्तमान पर्याय को जाननेवाले व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है और त्रिकाली अभेद एकरूप ज्ञायकभाव को बतानेवाले शुद्धनय को भूतार्थ कहा है।

यह देर से समझ में आये तो घबराना नहीं, धैर्य से समझने का प्रयत्न करना। पर्याय है, उसे गौण करके असत्यार्थ कहा है, अभाव करके नहीं। जिसका विषय विद्यमान न हो उसे

असत्यार्थ कहते हैं अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में पर्याय और भेद नहीं है। अतः समस्त व्यवहारनय को असत्यार्थ कहा है। पर्याय और भेद सर्वथा ही नहीं है, ऐसा नहीं है।

जिसमें भूतकाल और भविष्यकाल का भेद नहीं, वर्तमान पर्याय भी नहीं, अनंत गुणों का पिंड होते हुए भी जिसमें 'ज्ञान वह आत्मा' ऐसा गुण-गुणी का भेद नहीं; ऐसा जो अभेद एकाकाररूप नित्यद्रव्य शुद्धनय का विषय है। सम्यग्दर्शन के ध्येयभूत शुद्धज्ञायकभाव की दृष्टि करने पर अभेद एकरूप वस्तु का ही अनुभव होता है, अभेद वस्तु ही दृष्टि में आती है, भेद दृष्टिगोचर ही नहीं होता। अतः शुद्धनय की दृष्टि में भेद को अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिये। फिर भी भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं, पर्याय सर्वथा है ही नहीं, ऐसा नहीं समझना चाहिये। पर्याय, पर्यायरूप से अवश्य है परंतु अभेददृष्टि में पर्याय का अभाव है। अभेद की दृष्टि करनेवाली तो पर्याय है, तो भी दृष्टिरूप पर्याय जिसे विषय बनाती है, उस अभेद ज्ञायकभाव में तो पर्याय और भेद का सर्वथा अभाव ही है। दृष्टि के विषय में पर्याय गौणरूप से भी सम्मिलित नहीं है।

दृष्टि के विषय में पर्याय और गुण-गुणी के भेदरहित त्रिकाली अभेद एकरूप आत्मा आता है और वहाँ से धर्म का प्रारंभ होता है।

पर्याय सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, परंतु विषय बनानेवाली तो पर्याय ही है। अभेद एकरूप ज्ञायकभाव को अभेद की दृष्टि नहीं करना, परंतु पर्याय को उसकी दृष्टि करना है, अतः पर्याय है अवश्य। यदि पर्याय को सर्वथा न मानकर असत्यार्थ माना जाये तो वेदांत मतानुसार मान्यता हो जाती है।

वेदांत मतवाले भेदरूप अनित्य को, पर्याय को मायास्वरूप कहकर सर्वथा अभावस्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक एक अभेद शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं। यहाँ पर्याय को असत्यार्थ कहने का ऐसा प्रयोजन नहीं है। पर्याय का सर्वथा अभाव मानने से वेदांत मत के समान सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यात्व का प्रसंग आता है। कथंचित् अशुद्धनय को स्वीकार न करके सर्वथा एकांत शुद्धनय का पक्ष करनेवाला मिथ्यादृष्टि ही है।

यहाँ ऐसा समझना कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है, प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहनेवाली है। अतः जिस अपेक्षा से कहा गया हो उस अपेक्षा से समझना चाहिये। नित्य को सत्यार्थ और अनित्य को असत्यार्थ कहा, यह कथन स्याद्वाद शैली से किया है।

जिनवाणी स्याद्वादरूप होने से जन्म-मरण का अंत करनेवाले सम्यग्दर्शन के प्रयोजनवश शुद्धनय को मुख्य कहकर, निश्चय कहकर सत्यार्थ कहती है तथा व्यवहारनय को गौण कहके असत्यार्थ कहती है।

जैसे जगत में अन्य पदार्थ होते हुए भी अपने से विभिन्न होने से वे असत्यार्थ कहे जाते हैं। तो भी वे पदार्थ सर्वथा असत् नहीं हैं, पदार्थ तो अपने स्वरूप से सत् ही हैं; परंतु 'इस जीव में वे नहीं'—इस अपेक्षा वे असत् कहलाते हैं। उसीप्रकार सत् के त्रिकाली ज्ञायकध्रुवभाव और वर्तमान अंश ऐसे दो भेद अवश्य हैं, परंतु सम्यग्दर्शनरूपीसाध्य की सिद्धि के प्रयोजनवश, त्रिकाली ध्रुवज्ञायकअंश में वर्तमानपर्यायअंश न होने से त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके सत्यार्थ कहा है, और वर्तमान अंश को गौण करके असत्यार्थ कहा है।

अनादि से दुःख के मार्ग में चलते हुए जीव को वहाँ से छुड़ाकर सुख के मार्ग में लगाने के प्रयोजन से त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य कराने के लिये उसे मुख्य करके सत्यार्थ कहते हैं, और दुखमय परिभ्रमण का हेतु अनादिकालीन पर्यायबुद्धि छुड़ाने के लिये पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा है। इसप्रकार जिनवाणी प्रयोजनवश नय को मुख्य गौण करके कहती है।

जीव को व्यवहार का पक्ष तो अनादि से है ही, और सर्व प्राणी परस्पर बहुधा व्यवहार का ही उपदेश करते हैं तथा शास्त्रों में भी उसे शुद्धनय का हस्तावलंब, सहायक, निमित्त जानकर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है; परंतु इस समस्त व्यवहार का फल संसार ही है। शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष है, परंतु शुद्धनय का पक्ष जीव को कभी आया नहीं। 'मैं त्रिकाली चैतन्यसत्ता मात्र हूँ' ऐसा स्वीकार इसने कभी किया नहीं। ऐसा स्वीकार करे तो जन्म-मरण का अंत आये बिना रहे नहीं।

अनादि से शुद्धनय के यथार्थ पक्ष बिना अनंत बार द्रव्यलिंगी साधु होकर उसके फल में अनंत बार नवमें ग्रैवेयक भी गया, पर ध्रुव आत्मस्वभाव के आश्रय बिना शुभक्रिया के फल में अनादि से रखड़ (भटक) रहा है। अशुभ के फल में तो दुःखी है ही, पर ध्रुवस्वभाव के आश्रय के अभाव से शुभ के फल में भी अनंत काल से दुःखी है।

अशुभ भाव छेदने के लिये शुभ करने का निषेध नहीं है। प्रथम भूमिका में भी साधारण सज्जनता का आचरण, ब्रह्मचर्य की प्रीति, अनीति का त्याग, सत्य का आदर तो होते ही हैं, परंतु

वह अपूर्व नहीं। ऐसी चित्तशुद्धि तो अनंत बार करके उसी में सर्वस्व मानकर जीव अटक गया है। तो भी शुभ का निषेध नहीं है। क्योंकि जो तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ में खड़ा है, उसे बिल्कुल अविकारी सच्चिदानंद भगवान आत्मा की बात कैसे रुचेगी? अत: अविरोधी तत्त्व समझने की प्रथम पात्रता के लिये शुभभाव के आंगन में आना चाहिये, परंतु शुभ में ही अटक कर शुभ से निरपेक्ष निर्मल अविकारी स्वभाव की श्रद्धा न करे तो चित्तशुद्धि के शुभ व्यवहार का फल तो संसार ही है।

शुद्धनय का उपदेश भी विरल है। दिगंबर जैन धर्म सिवाय शुद्धनय का उपदेश अन्य कहीं भी नहीं है। पर दिगंबर जैन शास्त्रों में भी बहुधा व्यवहारनय का उपदेश किया है, क्योंकि व्यवहारजनों को व्यवहार के उपदेश बिना परमार्थ कैसे समझायें? अत: व्यवहार का उपदेश बहुत किया है, तो भी व्यवहार को सत्यार्थ जानकर उसका अवलंबन करने का फल तो संसार ही है।

इसप्रकार शुद्धनय का पक्ष कभी न आया होने से, उसका उपदेश भी कहीं-कहीं होने से, तथा शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष होने से यहाँ श्रीगुरु ने उसकी मुख्यता से उपदेश दिया है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। द्रव्यदृष्टि का विषय निर्मल पर्यायरहित त्रिकाली ज्ञायकभाव ही है। उसकी दृष्टि बिना जीव जब तक व्यवहार में, वर्तमान प्रकट अंश में मग्न रहेगा, तब तक उसकी पर्यायदृष्टि नहीं छूटेगी और उसे निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होगा।

समझो भाई! यह बात समझने योग्य है। यह बात बार-बार सुनने को भी मिलना दुर्लभ है। समझने में स्वयं की तैयारी होना चाहिये। जैसे शक्कर शब्द सुनने से या किसी को शक्कर खाते हुए देखने से उसका स्वाद नहीं आ सकता, पर स्वयं शक्कर लेकर मुख में रखकर चखने से शक्कर का स्वाद यथार्थ लक्ष्य में आता है; उसीप्रकार भगवान आत्मा की बात सुनने या उसका अनुभव करनेवाले ज्ञानियों को देखने से स्वभाव का निराकुल सहज आनंद नहीं आ सकता, पर सत्समागम से स्वयं निर्णय करके नित्य असंयोगी पूर्णस्वरूप को ज्ञान में दृढ़ करके अंदर में स्वआश्रय करके शुद्धनय से अभेद स्वभाव का अनुभव करके विकल्प रहित एकाकार शुद्धात्मस्वरूप के आनंद का स्वाद अनुभव में आता है। इस बात का खास श्रवण-मनन करना चाहिये, परमार्थ निर्मल वस्तु का निरंतर बहुमान होना चाहिये। उसकी दरकार और पुरुषार्थ के बिना अपूर्व फल नहीं आता। ●●

नियम और नियमसार

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की तृतीय गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णियमेण य जं कज्जं तणियमं णाणदंसणचरित्त।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं ॥३॥

नियम से जो करनेयोग्य हो वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही नियम है। विपरीत के परिहार के लिये (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्ध भावों के त्याग के लिये) सार शब्द जोड़ा गया है।

यहाँ (इस गाथा में) 'नियम' शब्द के साथ 'सार' शब्द क्यों लगाया है? इसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।

नियम अर्थात् मोक्षमार्ग वह कार्य है और उसका कारण जो त्रिकाल ध्रुव शुद्धस्वभाव है, वह कारणनियम है। वह कारणनियम त्रिकाल शुद्ध है। उसके आश्रय से प्रकट होनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र 'नियमसार' है।

स्वभावरत्नत्रय दो प्रकार का है। (१) त्रिकाल (२) वर्तमान। यहाँ मूलसूत्र में कार्यनियम की बात की है। उसमें से टीका में श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने कारणनियम की बात निकाली है। जो त्रिकाल स्वभावरत्नत्रय है, वह तो कारणरूपनियम है और जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है, वह कार्यनियम है। यह अपूर्व बात है। बहुत जीवों ने तो यह बात जीवन में कभी श्रवण भी नहीं की होगी। नियम अर्थात् निश्चितरूप से करने योग्य कार्य; और वह है रत्नत्रय, अतः रत्नत्रय ही नियम है। वही मोक्षमार्गरूपनियम है और उसके कारणरूप जो त्रिकालीस्वभाव है, वह कारणरूपनियम है।

शरीरादि के कार्य तो आत्मा के हैं ही नहीं और उनसे आत्मा का धर्म भी नहीं होता तथा जो राग-द्वेषादि भाव होते हैं, वे भी आत्मा के वास्तविक कार्य नहीं हैं। सहजस्वभाव के आश्रय

से जो निर्मल रत्नत्रय प्रकट होता है, वह ही आत्मा का निश्चयकार्य है और वही नियम अथवा मोक्षमार्ग है।

उस कार्य के प्रकट होने की भूमिका क्या है? सहज-अनंतचतुष्टयमय जो शुद्धज्ञान चेतना वह रत्नत्रय का कारण है अर्थात् वह कारणनियम है। यह कारणनियम आत्मा में त्रिकाल है। उसकी दृष्टि करके एकाग्र होने पर कार्यनियम प्रकट होता है।

शुद्धज्ञानमय जो त्रिकालस्वभाव है, उसके साथ सहजशुद्धचेतनापरिणाम भी त्रिकाल है। यहाँ जो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम कहा है, वह त्रिकाल है। तीन प्रकार की चेतना में अंतर के आश्रय से प्रकट होनेवाली ज्ञानचेतना तो कार्यरूप है, किंतु यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणामस्वभाव अनंतचतुष्टयात्मक त्रिकाल है, कारणरूप है, और इसी के आश्रय से कार्य प्रकट होता है।

मोक्ष का कारण रत्नत्रय है और वही नियम से करने योग्य कार्य है। उस रत्नत्रयरूपी कार्य का कारण स्वभावचतुष्टयमय सहजचेतना है, वह कारणनियम है। जो सहज-परमपारिणामिकभाव से स्थित स्वभाव-अनंतचतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम है, वह नियम (कारणनियम) है।

इस परमपारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी वह उत्पाद-व्ययरूप परिणाम का सूचक नहीं है और पर्यायार्थिकनय का भी विषय नहीं है। यह पारिणामिकभाव तो उत्पादव्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

भरतक्षेत्र में इस 'नियमसार' शास्त्र की जैसी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है, वैसी टीका अद्यतन अन्यत्र अलभ्य है। वन में रहकर, आत्मानुभव में निमग्न हो होकर यह टीका रची है। इस रूप में वह एक अपूर्व वारिस छोड़ गये हैं।

नियम से करनेयोग्य रत्नत्रय वही कार्य है, ऐसा मूलसूत्र में भगवान कुन्दकुन्द ने कहा है तथा टीका में उस कार्य के कारण की चर्चा की है। रत्नत्रयरूपी कार्य का कारण कौन है? सहजपरमपारिणामिकभाव से स्थित ऐसा सहजअनन्तचतुष्टयात्मक शुद्धचेतनापरिणाम कारणनियम है, और वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

प्रश्न : यहाँ जो सहजपारिणामिकभाव से स्थित शुद्धचेतनापरिणाम कहा गया है, वह सामान्य ध्रुव है या विशेष ध्रुव है।

उत्तर : जिसप्रकार सामान्य ध्रुव त्रिकाल है, उसीप्रकार उसका सहजपरिणाम भी ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय से रहित है। त्रिकाल ध्रुव और उसका शुद्ध वर्तमान भी ध्रुव; यह दोनों द्रव्यार्थिकनय के ही विषय हैं। 'परिणाम' कहने पर भी उसमें उत्पाद-व्यय नहीं हैं। जैसे सहजपरमपारिणामिक भाव त्रिकाल ध्रुव है, वैसे ही उसमें स्थित यह स्वभावचतुष्टयमय शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम भी ध्रुव है। वह कारणरूप है और अनंत आत्माओं में त्रिकाल रहनेवाला है। संसारपर्याय या मोक्षपर्याय तो एक समय की उत्पाद-व्ययवाली है, उसमें तो फेरफार है; किंतु त्रिकाल ध्रुव सामान्यस्वभाव और उसका ध्रुवपरिणाम, यह तो सभी जीवों के त्रिकाल एकरूप है।

इस शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में 'परिणाम' शब्द होने पर भी वह उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित नहीं करता तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है। यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। वह स्वयं मोक्षमार्ग नहीं है अपितु त्रिकाली है और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होता है।

जो मोक्षमार्ग प्रकट होता है, वह तो कार्य है और ध्रुव शुद्धचेतनापरिणाम उसका कारण है, तथा मोक्षमार्ग प्रकट हुआ वह तो कारण और मोक्षदशा हुई वह कार्य है। इस तरह दो प्रकार से कारण-कार्य है। मोक्ष और मोक्षमार्ग यह दोनों तो उत्पाद-व्यय वाले हैं और पर्यायार्थिकनय के विषय हैं तथा द्रव्यार्थिकनय का विषय सहजज्ञानचेतनापरिणाम है उसको कारणनियम कहते हैं। त्रिकाल सदृश एकरूप ध्रुवपरिणाम का अवलंबन लेने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपरिणाम प्रकट होता है, वह कार्य है। त्रिकाल सामान्यध्रुव और उसका सदृशरूप वर्तमान ध्रुवपरिणाम—यह दोनों कारणरूप नियम में समाविष्ट हो जाते हैं।

'नियम' के साथ 'सार' शब्द कहा, उसमें से त्रिकालीकारण की बात निकाली है। कोई अन्य किसी बाह्य कारण को माने अथवा व्यवहार या राग को कारण माने तो उस मान्यता को निरस्त करने के लिये यहाँ 'त्रिकालीकारण' सिद्ध किया है।

जिसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होता है, वह त्रिकालीकारण क्या है, उसे टीका में स्पष्ट किया है। 'करनेयोग्य कार्य' वह नियम है ऐसा कहा, तो उस कार्य का कारण कौन? त्रिकाल सहजपरमपारिणामिक-स्वभाव और उसमें स्थित सहजचेतनापरिणाम ही कार्यनियम

का कारण है। ऐसा कारणरूप स्वभाव प्रत्येक आत्मा में त्रिकाल विद्यमान है, उसका आश्रय करते ही कार्यनियमरूप मोक्षमार्ग प्रकट होता है। यह त्रिकाल परमपारिणामिक भाव ही तेरे मोक्षमार्ग का कारण है और वह तो तेरे पास सतत्–निरंतर वर्त ही रहा है। इसके अलावा व्यवहारकारण के आश्रय से तेरा मोक्षमार्ग नहीं है।

देखो तो सही! टीकाकार ने कैसी अद्भुत टीका की है। स्वयं आचार्य नहीं हैं किंतु मुनि हैं, वन में रहकर सिद्धों के साथ बातें की हैं। हे भगवन्! तुम किस कारण से सिद्ध हुए हो? कि ऐसे परमपारिणामिकभाव में स्थित सहजचेतनापरिणाम त्रिकाल है, वही कारण है और उसी के ही आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट करके सिद्धों ने मुक्ति प्राप्त की है।

अंदर में कारणरूप शक्ति त्रिकाल पड़ी है। उसी के सेवन से मोक्षमार्ग प्रकट होता है। जैसे मोर के अंडे में मोर होने की शक्ति पड़ी है, इसलिये उसी में से मोर होता है; वैसे ही चैतन्य की शक्ति में परमात्मदशा का सामर्थ्य भरा हुआ है, उसी में से परमात्मदशा प्रकट होती है। यहाँ तो सामान्य–विशेष दोनों को ध्रुव बताते हैं। त्रिकालसामान्यध्रुव पारिणामिकस्वभाव और उसका सहजचेतनारूप वर्तमानध्रुवपरिणाम कारणनियम है और उसमें अनंत मोक्षपर्यायों का सामर्थ्य भरा हुआ है। प्रथम अपनी ऐसी शक्ति की महिमा और विश्वास आना चाहिये कि परमात्मशक्ति मेरे में त्रिकाल भरी हुई है, कहीं बाहर से वह कार्यरूप से प्रकट होनेवाली नहीं है।

परमोत्कृष्ट स्वभाव से परिपूर्ण पारिणामिकभाव है और उसमें स्थित अनंतचतुष्टयरूप सहजचेतना परिणाम है, वह कारणनियम है। इसको कारणनियम कहकर मुनिराज ने राग और व्यवहार कारण का अभाव बताया है। व्यवहार तो कथनमात्र है, वास्तविक कारण नहीं है। अंदर में जो सहज पारिणामिक त्रिकालभाव और उसका शुद्धचेतना परिणाम है, वही निश्चय कारण है और उसी कारण के आश्रय से मोक्षमार्गरूप कार्य प्रकट होता है।

जैसे त्रिकाल सामान्यध्रुव है वैसे ही उसका वर्तमान भी ध्रुव है। यदि त्रिकालध्रुव का वर्तमान ध्रुव न हो तो वर्तमान में मोक्षमार्ग प्रकट होने की सामर्थ्य कहाँ से आयेगी?

प्रश्न : एक अभेदध्रुव के दो भेद कैसे हो गये?

उत्तर : जैसा सामान्यध्रुव है वैसा ही विशेष ध्रुव है, ऐसा कहकर उसकी पूर्णता बतायी है। सामान्य और विशेष कहीं दो जुदा नहीं पड़ गये हैं। जैसा सामान्यध्रुव है वैसा ही उसका

विशेषध्रुव है। ऐसा कहकर त्रिकाल और वर्तमान एकाकार अभेदस्वभाव को बताया है। द्रव्यदृष्टि के विषय में सामान्य ध्रुव और विशेषध्रुव दोनों आ जाते हैं।

नीचे भूमि अच्छी हो किंतु ऊपर क्षारवाली हो तो उस पर वृक्ष नहीं उगता और यदि ऊपर नीचे दोनों उपजाऊ हो तो वृक्ष बराबर उगता है।

आत्मा में त्रिकाल ध्रुवस्वभाव तो शुद्ध और उसका वर्तमान भी वैसा ही शुद्ध है, उसी में से मोक्षमार्ग प्रकट होता है। जैसा सामान्यध्रुव त्रिकाल है, वैसा ही उसका विशेष वर्तमानध्रुव है। विशेष का अर्थ यहाँ उत्पाद-व्ययवाली पर्याय नहीं है, किंतु वर्तमान वर्तनेवाला ध्रुव है। त्रिकाल शक्ति है, वह वर्तमान एकरूप ध्रुव है, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होता है। यह कहकर अंदर का आश्रय बताया है। बाहर में कोई मोक्षमार्ग का कारण है ही नहीं।

चैतन्य भगवान, ध्रुव ज्ञायकस्वरूप से परिपूर्ण परमपारिणामिकभाव है, उसमें सहज चेतना परिणाम भी वर्तमान ध्रुव है। अहो! जब देखो तभी तुम्हारा कारण तुम्हारे पास विद्यमान ही पड़ा है, उस कारण को नया उत्पन्न नहीं करना पड़ता, उसके आश्रय से कार्य प्रकट हो जाता है। कारण शोधने के लिये कहीं जाना पड़े ऐसा नहीं है। ऐसे का ऐसा ध्रुव जब देखो तब वर्तमान में तुम्हारे पास ही पड़ा है। उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता करने पर मोक्षमार्ग की पर्याय प्रकट हो जाती है। ध्रुवकारण तो त्रिकाल विद्यमान है और उसे पहचानने पर मोक्षमार्ग नवीन प्रकट होता है। मोक्षमार्ग तो कार्यनियम है और ध्रुव स्वभाव कारणनियम है। कारणनियम को करना नहीं पड़ता वह तो त्रिकाल है। जब देखो तब अंतर में वर्तमान में ही उपस्थित है। उसमें अंतर्मुख होने पर कार्यनियम प्रकट होता है।

स्वभावरत्नत्रय दो प्रकार का है। एक त्रिकाल कारणरूप और दूसरा कार्यरूप। उसमें जो कार्यरूप रत्नत्रय है, वह मोक्षमार्ग है।

देखो! टीका में अस्पष्टता नहीं रखी है, किन्तु गूढ़भावों को अत्यंत स्पसष्ट करके हीरा-माणिक पिरो दिये हैं। अज्ञानी न समझे अर्थात् ऐस कहे कि टीका करके तो सरल करने के बजाय समझना कठिन कर दिया है तो उसे कौन समझाये? अरे भाई! गूढ़ रहस्यों को कितना सरल किया है इसकी उसे खबर नहीं है। अंतरचक्षु उन्मीलित हों तब खबर पड़े न? तेरे अंतर में भंडार भरा है, उसे टीकाकार ने उद्घाटित किया है। आँख खोलकर देख तो सही।

[शेष अगले अंक में]

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

छद्मस्थ का भावश्रुतज्ञान भी राग बगैर (बिना) का है, इससे उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। अरे, देखिये तो सही, संतों की यह बात! देखिये, इस आत्मा की ज्ञान संपदा की महिमा!! अंतरंग में स्वसंवेदनरूप की यह वाणी है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि गृहस्थ धर्मी जीव को भी शुद्ध आत्मा के स्वसंवेदनरूप जो भावश्रुतज्ञान है, वह रागरहित होने से उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। सम्यग्दर्शनसहित ज्ञानी की यह बात है। चौथे-पाँचवें गुणस्थान में अभी सर्वथा वीतरागता नहीं है, और केवलज्ञान हुआ नहीं है; तब भी स्वसंवेदन में तो आंशिक रागरहितपना है, इसलिये उस ज्ञान को प्रत्यक्ष भी कहने में आता है। गृहस्थावस्था में रहते हुये सम्यग्दृष्टि का- अरे! पशु और नारकी में सम्यग्दृष्टि का ज्ञान भी स्वसंवेदन-अपेक्षा से प्रत्यक्ष है। देखिये, यहाँ श्रुतज्ञान को भी प्रत्यक्ष कह दिया।

यहाँ अब शिष्य प्रश्न करता है - प्रभो! आपने यहाँ भावश्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष कहा, तत्त्वार्थसूत्र आदि शास्त्रों में तो 'आद्येपरोक्षम्' ऐसा कहकर मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है; तब आप यहाँ श्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष किसप्रकार से कहते हो? देखिये, शिष्य शास्त्राधार से प्रश्न पूछता है। जिसको कुछ अभ्यास हो, समझने की जिज्ञासा हो, थोड़ा समझा हो और संदेह हो; वह जीव विशेष समझने के लिये प्रश्न पूछता है। जिसको समझने की बिलकुल इच्छा न हो, उसको प्रश्न नहीं उठता; लेकिन जो अभी समझने का इच्छुक है, ऐसे जीव को समझने के लिये जिज्ञासापूर्वक प्रश्न उठता है। इसलिये यहाँ शिष्य को उपरोक्त प्रश्न उठा है।

श्रीगुरु उसका समाधान करते हुये कहते हैं कि हे शिष्य! सुनो! आगम में जहाँ मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है, वहाँ वह उत्सर्ग का कथन है अर्थात् अभी कुछ और कहना है, इसमें गूढ़ रहस्य रह जाता है। पर की ओर के ज्ञान की अपेक्षा से आगम में मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है। लेकिन उस उत्सर्ग में बाधकरूप ऐसे अपवाद की अपेक्षा से तो मति-श्रुतज्ञान

प्रत्यक्ष है। उत्सर्ग कथन को क्षति पहुँचाये–ऐसी एक विवक्षा शेष रह जाती है, उसका नाम अपवाद है। कौनसा अपवाद है? कि स्वयं के आत्मा की ओर ढलकर – लक्ष्य कर स्वसंवेदनज्ञान की अपेक्षा से मति–श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है, ऐसा अपवाद है। तत्त्वार्थसूत्र में मति–श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है, वह उत्सर्ग कथन है। और यहाँ उसको प्रत्यक्ष कहा है, वह अपवाद कथन है।

यदि तत्त्वार्थसूत्र में उत्सर्ग कथन न होता तो वहाँ मति–श्रुतज्ञान को परोक्ष क्यों कहा? क्योंकि वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो है। यदि शास्त्र में सर्वथा परोक्ष ही कहा होता तो तर्क (न्याय) शास्त्र में उसको सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष क्यों कहा? इसलिये निश्चित हुआ कि मति–श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है, उसमें कुछ अपवाद भी है। अपवाद कथन से पर की ओर के मतिज्ञान को भी जैसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कह दिया है, वैसे निज आत्मस्वभाव के सन्मुख हुआ भावश्रुतज्ञान है, वह भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। देखिये, यह संतों की शैली! तर्क का आधार देकर श्रुतज्ञान को भी अनुभव में प्रत्यक्ष सिद्ध किया।

ग्यारह अंगों के ज्ञान को तो परोक्ष ही कहा, लेकिन चैतन्यस्वभाव की ओर झुके हुये सम्यग्दृष्टि के भावश्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष कहा। अंतर स्वभाव में भावश्रुतज्ञान को लाना (स्व में झुकाना) उसका नाम धर्म है। पर–ओर उपयोग जाये इतना तो परोक्ष है, लेकिन अंतर में चैतन्य को पकड़कर अनुभव करने की श्रुतज्ञान की जो शक्ति है, उस अपेक्षा से भावश्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है। धर्मी जीव को ऐसा ज्ञान होता है। कुदेवादि को माने ऐसी बात तो कहीं से कहीं गयी। सत्यार्थ देव–गुरु–शास्त्र का ज्ञान वह भी परोक्ष है और अंतरंग में चिदानंद स्वभाव के सन्मुख होकर उसका वेदन करे वह भावश्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है। सम्यग्दर्शन होते ही ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है।

भाषा बोली जाती है, वह तो जड़ है। आत्मा कुछ बोलता नहीं। बोलता तो दूसरा है, अर्थात् बोलने वाला आत्मा नहीं, लेकिन 'आत्मा के सिवाय' दूसरा अर्थात् 'जड़' है। यहाँ तो आत्मस्वभाव की ओर झुके हुये भावश्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष कहा। जो मति–श्रुतज्ञान है, वह एकांत से परोक्ष ही हो, और स्वसंवेदन अपेक्षा से भी आंशिक प्रत्यक्ष न हो, तो सुख–दुःख वगैरह का जो स्वसंवेदन होता है, वह भी परोक्ष ही ठहरेगा। लेकिन वह स्वसंवेदन तो कोई परोक्ष नहीं है,

वह संवेदन तो प्रत्यक्ष है। हर्ष, शोक, सुख, दु:ख की जो मनोदशा होती है, उसका स्वसंवेदन ज्ञान में प्रत्यक्ष होता है। बिच्छू ने काटा उस समय अंदर दु:ख की भावना होती है। उस दु:ख की मनोदशा का संवेदन तो स्वयं को प्रत्यक्ष है। बिच्छू के कारण से दु:ख नहीं, लेकिन अंदर जो दु:ख का वेदन होता है, वह संवेदन तो प्रत्यक्ष है। यह साधारण संवेदन की अपेक्षा से प्रत्यक्ष ज्ञान की बात है। अभी सम्यक् अथवा मिथ्याज्ञान का प्रश्न नहीं है, किंतु दृष्टांत देकर अंतर के भावश्रुतज्ञान का प्रत्यक्षपना सिद्ध किया है।

देखिये, इस आत्मा के उपयोग का सामर्थ्य! ऐसे सामर्थ्य को जाने तो उपयोगमय आत्मा की प्रतीति हुये बिना नहीं रहे। इसप्रकार ज्ञानसामर्थ्य की प्रतीति करने से आत्मस्वभाव की ओर दृष्टि जाये उसका नाम धर्म है।

इसप्रकार श्रुतज्ञान के स्वभाव का वर्णन किया।

अब अवधिज्ञानोपयोग का वर्णन करते हैं :-

यह आत्मा अवधिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से मूर्त वस्तु को एक अंश में प्रत्यक्ष जानता है, अर्थात् स्व-पर के भेदसहित सविकल्प जानता है। कोई सम्यग्दृष्टि मरकर इंद्र हो और वहाँ अवधिज्ञान का उपयोग कर देखे कि अहो! तीर्थंकर भगवान कहाँ विराजते हैं? महाविदेह में सीमंधर भगवान वगैरह तीर्थंकर विराजते हैं, ऐसे अवधिज्ञान में भगवान को प्रत्यक्ष देखता है। वहाँ स्वयं के ज्ञान को, उसीप्रकार भगवान को; दोनों को प्रत्यक्ष जानता है।

देखिये, महाविदेह में सीमंधर भगवान की सभा में कोई भावलिंगी संत विराजते हों वहाँ उनको अवधिज्ञान न हो, और वहाँ से स्वर्ग में जन्म हो, वहाँ अवधिज्ञान होता है। वह अवधिज्ञान में भगवान को देखता है, जानता है कि अहो! हम इन भगवान के निकट मुनि थे, लेकिन हमारे पुरुषार्थ में अधूरापन रह गया, इससे इस स्वर्ग में जन्म हुआ। वहाँ उनको जो अवधिज्ञान हुआ है, वह अवधिज्ञान स्वयं के ज्ञानोपयोग को, उसीप्रकार 'पर' को एकदेश प्रत्यक्ष जानता है। अर्थात् अवधिज्ञान में भी स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य है।

अवधिज्ञान गृहस्थावस्था में चौथे गुणस्थान में भी होता है। मन:पर्ययज्ञान भावलिंगी मुनि अवस्था में ही होता है।

मन:पर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम से, वीर्यांतराय के क्षयोपशम से, और स्वयं के मन के अवलंबन द्वारा मन:पर्ययज्ञान अंदर-एकाग्रता से होता है। वह ईहापूर्वक होता है, इससे मन का निमित्त लिया है। कर्म का क्षयोपशम तो निमित्त मात्र है। स्वयं के कारण से मन:पर्ययज्ञान का विकास होता है, तब ज्ञान पर के मन में प्राप्त मूर्तपदार्थ को एकदेश प्रत्यक्ष से सविकल्प जानता है।

नित्य आत्मद्रव्य, उसके अनंतगुण नित्य, उनमें एक ज्ञान गुण, उसकी पाँच अवस्थायें-पर्यायें हैं। उनमें मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्ययज्ञान साधकदशा में अल्पज्ञ-छद्मस्थ को होता है। केवलज्ञान सर्वज्ञ वीतराग अरहंत भगवान को होता है। अल्पज्ञ अवस्था में सर्वज्ञता की प्रतीति होती है।

केवलज्ञान किसप्रकार प्रकट होता है, वह पहिले समझाते हैं।

सच्चिदानंद आत्मा त्रिकाल शक्तिरूप से है। उसकी सम्यक्प्रकार से श्रद्धा करना। आत्मा निश्चय से स्वयं ज्ञायकचैतन्य अनंत गुणों का पिण्ड है। ज्ञानादिरूप से प्रति समय बदलनेवाला (प्रति समय की नूतन पर्याय) निर्मलस्वभावी है। उसका अच्छी तरह स्वसंवेदन ज्ञान करना, और एक ज्ञानमात्र से आचरण करना; इस रूप जो स्वसन्मुख एकाग्र-ध्यान, उसके द्वारा केवलज्ञानावरणी आदि चार घातियाकर्मों का नाश होकर, जो स्वयं से ही उत्पन्न होता है; जो एक समय में समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव को जाननेवाला है, और सर्वप्रकार से उपादेय-ग्रहण करनेयोग्य है; वह केवलज्ञान है। वह आत्मा से अभेद एकरूप शक्ति में से उत्पन्न होता है। बाहर से उत्पन्न नहीं होता।

जैसे दियासलाई में अग्नि शक्तिरूप से विद्यमान है, उसको (सलाई या काढ़ी को) उसके योग्य स्थान में घिसें-रगड़ें तो अग्नि प्रकट होती है; वैसे आत्मा में शक्तिरूप से केवलज्ञान आनंद वगैरह अनंत गुण हैं, उनको भली प्रकार पहिचान कर वहीं एकाग्र होवे तो प्राप्य की प्रगट प्राप्ति होती है।

जितने अरहंत भगवान हुए हैं, वे ऐसे एकाग्र ध्यान द्वारा प्रगट शुद्धता को प्राप्त हुए हैं। अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य - ये अनंत चतुष्टय तेरहवें गुणस्थान में एक साथ प्रगट होते हैं,

और निमित्त में चार घातिकर्म का अभाव होता है। शक्ति पूर्ण थी, वह अंदर अभेद थी, वह प्रगट हुई। वह श्रद्धा, ज्ञान, आचरणरूप एकाग्रता से ही प्रगट होती है। ऐसा पुरुषार्थ भी बताया है और प्रगट हुई पूर्ण दशा अंदर से नयी-नयी उत्पन्न हुई सदा आत्मा के साथ रहती है। प्रत्येक आत्मा ऐसा परिपूर्ण स्वभावी है।

इसप्रकार ऐसी आत्मा को पूर्ण ज्ञानस्वभावी पहिचानकर, उसमें एकाग्र होकर जो केवलज्ञान प्रगट होता है; वह एक समय में सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को बगैर इच्छा के जाना करता है, और सर्वप्रकार से उपादेयरूप-ग्रहण करनेयोग्य है।

यहाँ राग-अवस्था में खंड-खंड होता ज्ञान भी अनेक तिथि वार और अनेक वर्ष के सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण की बातें जानता है। तब इच्छा और अज्ञान सर्वथा दूर कर अंदर एक स्वद्रव्य स्वभाव से जो केवलज्ञान प्रगट होता है, वह एकसमय में सर्वप्रकार से त्रिकालवर्ती सबको (संपूर्ण पदार्थों को) जानता है, तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि ज्ञानगुण की पूर्ण पर्याय का ऐसा सामर्थ्य है। इससे वह केवलज्ञान सर्वप्रकार से उपादेय है।

यहाँ उपयोग का अधिकार है, इसलिये केवलज्ञान उपादेय है ऐसा कहा है। लेकिन जहाँ शुद्ध द्रव्यदृष्टि की बात हो, वहाँ त्रिकाली ध्रुव परम पारिणामिक शुद्धद्रव्यस्वभाव ही आदरणीय है, ऐसा कहने में आता है; वहाँ पर्याय गौण रहती है। यहाँ उपयोग में केवलज्ञानरूप जो पूर्णपर्याय प्रगट हुई वह आत्मा के साथ नित्य रहनेवाली है, इसलिये वह आदरणीय है। अपूर्ण दशा आदरणीय नहीं है, ऐसा समझना। [क्रमशः]

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ॥

पुण्य से वैभव होता है, और वैभव से अभिमान। अभिमान से बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धिभ्रम होने से पाप होता है। इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे। [परमात्मप्रकाश, अध्याय २, गाथा ६०]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – सम्यक्त्व का आत्मभूत लक्षण क्या है ?

उत्तर – स्व-पर का यथार्थ भेदज्ञान सदा सम्यक्त्व के साथ ही होता है तथा यह दोनों पर्यायें एक ही स्व-द्रव्य के आश्रय से होती हैं, इसलिये भेदविज्ञान सम्यक्त्व का आत्मभूत लक्षण है। गुण-भेद की अपेक्षा से सम्यक्त्व का आत्मभूत लक्षण निर्विकल्प प्रतीति है और सम्यक्त्व का अनात्मभूत लक्षण भेदविज्ञान है-ऐसा भी कहा जाता है। किंतु निर्विकल्प अनुभूति को सम्यक्त्व का लक्षण नहीं कहा, क्योंकि वह सदा नहीं टिकी रहती। इतनी बात अवश्य है कि सम्यक्त्व के उत्पत्तिकाल में अर्थात् प्रकट होते समय निर्विकल्प अनुभूति अवश्यमेव होती है, इसलिये उसे 'सम्यक्त्वोत्पत्ति' अर्थात् सम्यक्त्व प्रकट होने का लक्षण कह सकते हैं।

अनुभूति सम्यक्त्व के सद्भाव को प्रसिद्ध अवश्य करती है, परंतु जिस समय अनुभूति नहीं हो रही होती है, उस समय भी सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व का सद्भाव तो रहता ही है; इसलिये अनुभूति को सम्यक्त्व के लक्षण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। लक्षण तो ऐसा होना चाहिये कि जो लक्ष्य के साथ सदैव रहे और जहाँ लक्षण न हो वहाँ लक्ष्य भी न हो।

प्रश्न – नवतत्त्व को जानना सम्यग्दर्शन है या शुद्धजीव को जानना सम्यग्दर्शन है ?

उत्तर – नवतत्त्व को यथार्थरूप से जानने पर उसमें शुद्धजीव का ज्ञान भी साथ में आ ही जाता है, तथा जो शुद्धजीव को जानता है, उसको नवतत्त्व का भी यथार्थ ज्ञान अवश्य होता है। इसप्रकार, नवतत्त्व के ज्ञान को सम्यक्त्व कहो अथवा शुद्धजीव के ज्ञान को सम्यक्त्व कहो – दोनों एक ही हैं। (ज्ञान कहने पर, उस ज्ञानपूर्वक की प्रतीति को सम्यग्दर्शन समझना) इसमें

एक विशेषता यह है कि सम्यक्त्व प्रकट होने की अनुभूति के समय में नवतत्त्व के ऊपर लक्ष्य नहीं होता, वहाँ तो शुद्धजीव के ऊपर ही उपयोग लक्षित होता है; और 'यह मैं हूँ' ऐसी जो निर्विकल्प प्रतीति है, उसके ध्येयभूत एकमात्र शुद्धात्मा ही है।

प्रश्न – नयपक्ष से अतिक्रांत, ज्ञान-स्वभाव का अनुभव करके उसकी प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है – इसप्रकार सम्यग्दर्शन की विधि तो आपने बतलाई; परंतु उस विधि को अमल में कैसे लावें? विकल्प में से गुलाँट मारकर निर्विकल्प किसप्रकार हों? वह समझाइए।

उत्तर – विधि यथार्थ समझ में आ जाये तो परणति गुलाँट मारे बिना रहे नहीं। विकल्प की और स्वभाव की जाति भिन्न-भिन्न है, ऐसा भान होते ही परिणति विकल्प में से छूटकर स्वभाव के साथ तन्मय हो जाती है। विधि को सम्यक्रूपेण जानने का काल, और परिणति के गुलाँट मारने का काल; दोनों एक ही हैं। विधि जानने के बाद उसे सिखाना नहीं पड़ता कि तुम ऐसे करो। जो विधि ज्ञात की है उसी विधि से ज्ञान अंतर में ढलता है। सम्यक्त्व की विधि जाननेवाला ज्ञान स्वयं कहीं राग में तन्मय नहीं होता, वह तो स्वभाव में तन्मय होता है – और ऐसा ज्ञान ही सच्ची विधि को जानता है। राग में तन्मय रहनेवाला ज्ञान सम्यक्त्व की सच्ची विधि को नहीं जानता।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन और आत्मा भेदरूप हैं कि अभेदरूप हैं?

उत्तर – यह सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्याय और आत्मा अभेद हैं। राग को और आत्मा को तो स्वभाव-भेद है, किंतु यह सम्यग्दर्शन और शुद्धात्मा अभेद हैं। परणति स्वभाव में अभेद होकर परिणमित हुई है, आत्मा स्वयं अभेदपने उस परिणतिरूप से परिणमित हुआ है – उसमें भेद नहीं है। व्यवहारसम्यग्दर्शन तो विकल्परूप है, वह कहीं आत्मा के साथ अभेद नहीं है।

प्रश्न – द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद के विचार में भी मिथ्यात्व है – वह किसप्रकार है?

उत्तर – भेद का विचार करना कहीं मिथ्यात्व नहीं है। ऐसा भेद-विचार तो सम्यग्दृष्टि को भी होता है; किंतु उस भेद-विचार में जो रागरूप विकल्प है, उसे लाभ का कारण मानना और उसमें एकत्वबुद्धि करके अटक जाना, वह मिथ्यात्व है। एकत्वबुद्धि किये बिना मात्र भेद-विचार मिथ्यात्व नहीं है, वह तो अस्थिरता का राग है। ●●

समाचार दर्शन

सोनगढ़ – पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजते हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक है। प्रातः समयसार कलशटीका पर एवं दोपहर को समयसार सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर उनके अत्यंत मार्मिक प्रवचन चल रहे हैं।

सोनगढ़ में शिक्षण शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति ही इस वर्ष भी सोनगढ़ में दिनांक ११-८-७७ से ३०-८-७७ तक शिक्षण शिविर होने जा रहा है। आत्मार्थी बन्धुओं से लाभ लेने का साग्रह अनुरोध है।

ग्यारहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर सानंद संपन्न

प्रांतिज – पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, बापूनगर, जयपुर द्वारा संचालित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-शृंखला में ग्यारहवाँ शिविर दिनांक १५ मई से ३ जून, १९७७ तक अभूतपूर्व धर्मप्रभावना के साथ सानंद संपन्न हुआ।

आदरणीय विद्वद्वर्य श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता एवं उनके सहयोगियों द्वारा आवास एवं भोजनादि की इतनी सुंदर व्यवस्था थी कि भीषण गर्मी में भी किसी को कोई तकलीफ नहीं हुई और न कोई आदमी बीमार पड़ा। लगभग डेढ़ हजार व्यक्तियों का भोजन प्रतिदिन चलता था। इस बीस दिवसीय ज्ञान-यज्ञ में भारत के विभिन्न प्रांतों से अनेक गणमान्य विद्वान् और श्रीमान् पधारे थे।

शिविर के मुख्य आकर्षण के विषय श्रीमान् विद्वद्वर्य पंडित खीमचंदभाई के प्रातःकालीन एवं दोपहर के आध्यात्मिक प्रवचन तथा डॉ.हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा ली गयी प्रशिक्षण कक्षायें और रात्रिकालीन प्रवचन थे। इनके अतिरिक्त पंडित शशीभाई भावनगर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी विदिशा, पंडित उत्तमचंदजी सिवनी, पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, पंडित देवीलालजी मेहता उदयपुर, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित बाबूभाई नाथालाल फतेपुर आदि के द्वारा संचालित कक्षायें और समय-समय पर हुए प्रवचन भी आकर्षण के विषय थे।

प्रशिक्षण कक्षाओं में प्रायोगिक अभ्यास एवं परीक्षाफल तैयार करने में डबलट्रेंड

धर्माध्यापक सर्वश्री विजयकुमारजी बरायठा, ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी भोपाल, ब्रह्मचारी रमेशकुमारजी ललितपुर, पंडित ज्ञानचंदजी 'स्वतंत्र' बासौदा, पंडित अभयकुमारजी जबलपुर, ब्रह्मचारी भानुकुमारजी ललितपुर, श्री केशवरावजी लाहना नागपुर, सौ० सरोज ए० गाँधी भावनगर, सौ०कमलाबाई विदिशा, सौ० गुणमालाबाई जयपुर, कु० शुद्धात्मप्रभा जैन जयपुर आदि का सहयोग सराहनीय रहा।

परीक्षा व्यवस्था का सब कार्य श्री हेमचंद जैन ने कुशलता से सम्भाल रखा था।

इस अवसर पर भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान् सेठ साहू शांतिप्रसादजी जैन, सेठ श्री लालचंद हीराचंद बम्बई, सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर, सेठ श्री रतनललाजी गंगवाल इंदौर, सेठ श्री जे० लालचंदजी इंदौर, सेठ श्री सुकुमारचंदजी मेरठ, श्री भगतरामजी जैन दिल्ली, सेठ श्री हीराभाई भीखाभाई बम्बई, सेठ श्री माणिकलाल आर० गाँधी बम्बई, सेठ श्री जवाहरलालजी विदिशा, सेठ श्री हरकचंदजी बिलाला अशोकनगर, सेठ श्री छोटाभाई बम्बई, सेठ श्री हीरालालजी काला भावनगर, श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर, डॉ० प्रियंकर जैन, श्री ब्रह्मचारी बसंतभाई दोशी, डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल आदि गणमान्य लोग पधारे थे।

अंत में विशाल समापन-समारोह हुआ जिसमें सभी समागत विद्वानों का अभिनंदन पत्र एवं प्रशस्तिपत्र द्वारा यथोचित सार्वजनिक स्वागत किया गया।

इस शिविर से सारे गुजरात में एक जागृति की लहर दौड़ गयी। गुजरात के ही एक सौ एक भाई-बहिन प्रशिक्षित हुए, जिन्होंने अपने यहाँ जाकर दैनिक स्वाध्याय-गोष्ठी एवं वीतराग-विज्ञान पाठशाला चलाने का संकल्प व्यक्त किया।

इस अवसर पर दश हजार रुपये से अधिक का धार्मिक साहित्य बिका एवं आत्मधर्म तथा जैनपथ-प्रदर्शक के हजारों ग्राहक बने।

उदयपुर (राजस्थान) एवं कोल्हापुर (महाराष्ट्र) की ओर से अगले शिविर के लिये आग्रहपूर्ण आमन्त्रण प्राप्त हुए, किंतु अभी अगले शिविर के लिये समय अधिक होने से स्वीकृति देना संभव नहीं था।

मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

दीक्षांत समारोह संपन्न

प्रांतिज – श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का दसवाँ दीक्षांत समारोह यहाँ दिनांक ३ जून १९७७ को आनंद और उत्साह के वातावरण में सविधि संपन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान् सेठ लालचंद हीराचंद बम्बईवालों ने की।

ज्ञातव्य है कि दिनांक १५ मई से ३ जून १९७७ तक होनेवाले इस शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में २०८ प्रशिक्षार्थी अध्यापक-अध्यापिकाओं ने बालबोध प्रशिक्षण तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण में भाग लिया तथा ४२७ बालक-बालिकाओं ने बाल शिक्षण में भाग लिया। इनके अलावा छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका की शिक्षण कक्षाओं में प्रतिदिन लगभग एक हजार से भी अधिक प्रौढ़ शिक्षार्थी शिक्षण प्राप्त करते थे।

प्रवेशिका प्रशिक्षण में श्री कैलाशचंदजी जैन ललितपुरवालों को प्रथम स्थान, श्री अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल जयपुर को द्वितीय स्थान तथा श्री ऋषभकुमार जैन सौरई और श्री नरेन्द्रकुमार जैन ललितपुर को तृतीय स्थान मिला।

बालबोध प्रशिक्षण में श्री दिनेशचंद माणिकचंद शाह बम्बई ने प्रथम स्थान, श्रीमती सौ० डॉ० उज्ज्वला शाह एम.बी.बी.एस. ने द्वितीय स्थान तथा श्री रमेशचंद्र गुप्ता (अजैन) और सुश्री इंदिराबैन केशवलाल कोटडिया हिम्मतनगर ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। सभी उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अध्यक्ष महोदय के हस्त से प्रमाण-पत्र एवं जैन साहित्य से पुरस्कृत किया गया।

हेमचंद जैन 'चेतन'

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की मीटिंग

प्रांतिज – शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर दिनांक ३१-५-७७ को परीक्षा बोर्ड की मीटिंग, बोर्ड के अध्यक्ष श्रीमान् आध्यात्मिक प्रवक्ता सेठ खीमचंद जेठालाल सेठ की अध्यक्षता में संपन्न हुई। मंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने गतवर्ष की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। परीक्षा बोर्ड की गुजरात शाखा की रिपोर्ट श्री चेतनकुमारजी जैन ने प्रस्तुत की। महाराष्ट्र प्रान्त की ओर से कोल्हापुर में परीक्षा बोर्ड की शाखा कायम करने के लिये डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल ने एवं ब्रह्मचारी श्री धन्यकुमारजी बेलोकर ने योजना प्रस्तुत की। निर्णय हुआ कि मराठी

वीतराग-विज्ञान पाठमाला के तीनों भाग जो अभी प्रेस में हैं - वे शीघ्र प्रकाशित होकर अध्ययन में आ जावें, उसके बाद शाखा खोलने बाबत विचार किया जावे।

गुजरात शाखा के प्रतिनिध के रूप में श्री रमणभाई तथा श्री चेतनकुमारजी जैन को परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी में सम्मिलित किया गया।

चूँकि पंडित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जुलाई में प्रारंभ होने जा रहा है, अत: परीक्षा बोर्ड में शास्त्री व आचार्य परीक्षाओं का पठनक्रम शीघ्रातिशीघ्र निर्धारित होना चाहिये। यह कार्य डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं श्री नेमीचंदजी पाटनी को सौंपा गया कि वे अगस्त में संपन्न होनेवाले सोनगढ़ के प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर पाठ्यक्रम तैयार करके लावें और उसे अंतिम रूप देने के लिये निम्न विद्वानों की उपसमिति में प्रस्तुत करें-

श्री पंडित हिम्मतलाल जेठालाल शाह, सोनगढ़ — श्री पंडित खीमचंदभाई, सोनगढ़

श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली — श्री पंडित नेमीचंदजी पाटनी, आगरा

श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर

मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंग संपन्न

प्रांतिज - शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर तारीख ३०-५-७७ को समिति की मीटिंग समिति के अध्यक्ष श्रीमान् पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की अध्यक्षता में संपन्न हुई। समिति के महामंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने गत वर्ष की रिपोर्ट सुनाई तथा ३१-३-७७ तक का ऑडिट किया हुआ हिसाब प्रस्तुत किया।

सन् १९७१ में ५ पाठशालाओं से समिति ने कार्यारंभ किया था तथा भगवान महावीर निर्वाणोत्सव-काल में इन पाठशालाओं की संख्या २५० तक पहुँचाने का संकल्प किया था। वह संकल्प पूर्ण कर आज इस समिति के अंतर्गत अनुदान लेनेवाली तथा बिना अनुदान से चलनेवाली सब मिलाकर २६६ पाठशालायें सब प्रान्तों में चल रही हैं।

इस वर्ष समिति ने इसके अंतर्गत चलनेवाली पाठशालाओं का स्तर सुधारने के लिये तथा नवीन पाठशालायें खुलवाने के लिये श्री पंडित गोविंदरामजी खरेड़ीवालों का सहयोग

प्राप्त किया है और उनके निरीक्षण-कार्यक्रम से पाठशालाओं के कार्य में बहुत सुधार हुआ है तथा नवीन पाठशालायें भी चालू हुई हैं।

गुजरात प्रांतीय समिति ने अपने क्षेत्र में विशेष प्रचार के लिये ५ व्यक्तियों की एक उपसमिति श्री रमणभाई के संयोजकत्व में बनायी जो भ्रमण कर पाठशालायें खुलवायेगी एवं चालू पाठशालाओं का स्तर सुधारने का प्रयास करेगी। इस समय गुजरात प्रांत में ९ गाँवों में नई पाठशालायें चालू करने की घोषणा की गयी।

दानदातारों की ओर से ७७-७८ के साल के लिये २५१ रुपये प्रति पाठशाला के हिसाब से १०१ पाठशालाओं के लिये अनुदान दिये जाने की स्वीकृतियाँ प्राप्त हुईं।

श्रीमान् सेठ साहू शांतिप्रसादजी जैन ने संस्था की गतिविधियों से प्रसन्न होकर कार्य की अत्यंत सराहना की एवं साहू जैन ट्रस्ट की ओर से ५०० रुपये माहवार का अनुदान इस समिति को देने की स्वीकृति प्रदान की। समिति ने श्रीमान् साहू साहब को इस संस्था के संरक्षक पद का गौरवपूर्ण भार सौंपा। **मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, जयपुर**

श्री कुन्दकुन्द कहान दिग० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का द्वितीय अधिवेशन सानंद संपन्न

प्रांतिज : श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण के अवसर पर श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का द्वितीय अधिवेशन श्रीमान् सेठ लालचंद हीराचंद की अध्यक्षता में दिनांक २-६-७७ को पाँच हजार से अधिक जनता के बीच सानंद संपन्न हुआ।

मंगलाचरण के उपरांत श्रीमान् सेठ लालचंद हीराचंद का सुरक्षा ट्रस्ट तथा अनेक संस्थाओं द्वारा हार्दिक स्वागत किया गया। तत्पश्चात् ट्रस्ट के मंत्री श्री माणिकलाल आर० गाँधी द्वारा ट्रस्ट की गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी दी गयी तथा महामंत्री ब्रह्मचारी श्री धन्यकुमारजी बेलोकर ने भी अपने विचार व्यक्त किये। इसके पश्चात् ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता का महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ। इसमें उन्होंने तीर्थक्षेत्रों और जीवंत तीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा के कृत एवं प्रस्तावित कार्यों की तथा तीर्थक्षेत्र कमेटी के साथ पूर्ण सहयोग की चर्चा की तथा तीर्थक्षेत्र कमेटी की सहमति और सहयोग से चलनेवाली ट्रस्ट की तीर्थक्षेत्र सर्वेक्षण योजना पर विस्तृत प्रकाश डाला एवं जिनवाणी की सेवा एवं तीर्थरक्षा के

लिये सुयोग्य कार्यकर्ता तैयार करने के लिये ट्रस्ट द्वारा जुलाई ७७ से खोले जानेवाले श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की आवश्यकता और योजना की भी चर्चा की।

चर्चित आशंकाओं को स्पष्ट करते हुए श्री नेमीचंदजी पाटनी ने स्पष्ट किया कि दाताओं की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए ट्रस्ट में जो रकम जिस मद में खर्च करने के लिये प्राप्त होती है, उसे उसी में खर्च की जाती है। तीर्थों के लिये प्राप्त रकम तीर्थों एवं साहित्य और ज्ञान प्रचार के लिये प्राप्त रकम साहित्य और ज्ञान प्रचार में ही लगायी जाती है।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने कहा कि कतिपय कलहप्रिय तत्त्वों द्वारा तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के बीच असहयोग और मतभेद के कुछ भ्रम फैलाये जा रहे हैं, अत: दोनों कमेटियों के अध्यक्ष विज्ञप्तियों द्वारा उनका निराकरण करें, जिससे समाज में कोई भ्रम न फैला सके।

अंत में अध्यक्षीय भाषण में सेठ लालचंदजी ने तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की सक्रियता और सफलता पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कतिपय निहित स्वार्थों द्वारा फैलाये जानेवाले इस भ्रम का जोरदार खंडान किया और कहा कि तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट एवं तीर्थक्षेत्र कमेटी में कोई मतभेद नहीं है। उन्होंने कहा – हम तो चाहते हैं कि ऐसे अनेकानेक ट्रस्ट बनें। भ्रम दूर करने के लिये विज्ञप्तियाँ निकालने की आवश्यकता भी स्वीकार की तथा शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर की चर्चा करते हुए इसप्रकार के अनेकानेक शिविर निरंतर लगाते रहने का आग्रह किया। **–बसंत दोशी**

जयपुर – श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के खुलने की पूर्व तैयारियाँ यहाँ दिनांक १२-६-७७ से ही तेजी से प्रारंभ हो गयी हैं। इसके लिये श्री नेमीचंदजी पाटनी, डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा आदि सभी दिन-रात कार्यरत हैं। विभिन्न स्थानों पर प्रतिदिन डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के दोनों समय प्रवचन होने से यहाँ एकदम आध्यात्मिक वातावरण बन गया है। १५ छात्रों को प्रवेश दिया जा चुका है। स्थानीय समाज में महती धर्म प्रभावना हो रही है। **–अखिल बंसल**

कोटा – यहाँ श्री पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आपके द्वारा दिनांक ११ जून से ३० जून तक चलाये गये आध्यात्मिक शिविर से समाज को काफी लाभ हुआ। प्रतिदिन दोनों समय के प्रवचनों में शताधिक लोगों ने भाग लिया। **–इंदरचंद जैन, कोटा**

कुलशगढ़ – भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में यहाँ एक महावीर चैत्यालय का निर्माण हुआ। दिनांक ६–५–७७ को भगवान महावीर की मनोज्ञ प्रतिमा इस मंदिर में प्रतिष्ठापित की गयी। वेदी प्रतिष्ठा का कार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर तथा ब्रह्मचारी दीपंचदजी इंदौरवालों के द्वारा संपन्न हुआ। इस अवसर पर आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता तथा पंडित कन्नुभाई दाहौद के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई।

– मंत्री, श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी समाज, कुशलगढ़

बजरिया बीना – ५ जून से २० जून १९७७ तक श्री ब्रह्मचारी हेमराजजी भोपाल के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आपका प्रतिदिन ४ घंटे कार्यक्रम चलता था, जिसमें सैकड़ों लोग मंत्र–मुग्ध होकर आपके प्रवचनों का रसास्वादन करते थे। **– बाबूलाल 'मधुर'**

❀*❀*

पाठकों के पत्र

कोटा (राज०) से श्री इंदरमलजी जैन लिखते हैं –

आत्मधर्म समय पर मिल जाता है। इस पंचम काल में पूज्य स्वामीजी के प्रवचन एवं आपके संपादकीय लेख ऐसे प्रतीत होते हैं – जैसे माता अपने बच्चे को उसके रोने पर भी हाथ–पैरों को अपने पैरों में दबाकर जबरदस्ती उसे घुट्टी पिला देती है। मानो उसीप्रकार चारों तरफ हा–हाकार के वातावरण का ध्यान न देकर तत्त्व को पिला रहे हैं। ऐसा समय युग–युग तक बना रहे ऐसी कामना है।

रतलाम (म०प्र०) से श्री नानालाल के. मेहता एडवोकेट लिखते हैं –

श्री कानजी स्वामी दिगम्बर समाज के एक महान और श्रेष्ठ श्रावक हैं, महापुण्यशाली हैं, उनकी वाणी में ओज है। यदि इन्हें इस काल का दूसरा श्रीमद् राजचंद्र कहा जाये तो कोई हर्ज न होगा।

आपने आत्मधर्म मासिक पत्र की जो कायापलट तथा दशलक्षण आदि धर्मों पर ज्ञानमीय श्रेष्ठ लेख देकर जो तरक्की की है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है।

ललितपुर (उ०प्र०) से श्री मगनलालजी जैन लिखते हैं –

आपके माध्यम से आत्मधर्म का जो प्रतिनिधित्व हो रहा है, उसके फलस्वरूप प्रत्येक अंक निरंतर सरस, आकर्षक, मननपूर्ण बनता जा रहा है। जैनधर्म के दर्शन में साधारण–सी रुचि रखनेवाले जैन धर्मावलम्बियों को इस पत्र द्वारा जैनत्व के मर्म को जानने में सहायता मिली है। घर–घर में यह निरंतर पठनीय बनता जा रहा है।

बम्बई (महा०) से श्री मूलचंदभाई तलाटी लिखते हैं –

जब से आपके संपादकत्व में हिंदी आत्मधर्म का प्रकाशन प्रारंभ हुआ है, तब से आपकी आध्यात्मिक तर्क, न्याय और साहित्यिक कलम से हिंदी आत्मधर्म की अद्‌भुत प्रतिभा और दार्शनिक भाव का प्रतिभास होता है और आगामी प्रति पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ती है। सचमुच संपादन योग्य-संपादक के द्वारा होने से पत्रिका यथार्थ स्वरूप को प्राप्त होती है; फलस्वरूप पढ़नेवालों को अत्यंत आनंद, संतोष और वस्तुस्वरूप का ख्याल आता है।

पुराखुर्द (उ०प्र०) से श्री काशीराम ज्ञानचंद जैन लिखते हैं –

आत्मधर्म के प्रत्येक अंक बहुत ही सुंदर एवं मनमोहक हैं। मई के अंक में 'उत्तम शौच' एक विश्लेषण बहुत ही सुंदर लिखा गया है, बार-बार पढ़ने पर भी मन नहीं भरता। जब से आत्मधर्म मंगवाया है, हमारे जीवन में एक नया मोड़ आ गया है।

छिंदवाड़ा (म०प्र०) से श्री पीयूष जैन लिखते हैं –

आपके द्वारा उत्तमक्षमा आदि दस धर्मों का जो सरल, सुबोध भाषा में विलक्षण विश्लेषण किया जा रहा है, वह मुझ जैसे अनेकों अल्पज्ञानियों के लिये अत्यंत उपकारी सिद्ध हुआ है। 'स्वामीजी से इंटरव्यू' ने तो गजब का विरोध शांत किया है। नई जान फूंककर आपने इस पत्रिका को मुमुक्षुओं की सर्वप्रिय पत्रिका बना दी है।

तत्त्वविचार की महिमा

देखो, तत्त्वविचार की महिमा! तत्त्वविचाररहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं; और तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। तथा किसी जीव को तत्त्वविचार होने के पहले कोई कारण पाकर देवादिक की प्रतीति हो, व व्रत-तप का अंगीकार हो, पश्चात् तत्त्वविचार करे; परंतु सम्यक्त्व का अधिकारी तत्त्वविचार होने पर ही होता है।

– मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २६०

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) जिन सज्जनों को आत्मधर्म के डबल अंक प्राप्त हो रहे हैं, वे कृपया अपने दोनों ग्राहक नंबर लिखें ताकि उनका एक अंक बंद किया जा सके।

(२) आत्मधर्म के चंदे का मनिआर्डर भेजते समय उसके नीचे वाली स्लिप पर अपना ग्राहक नंबर एवं पता अवश्य लिखें।

(३) बैंक ड्राफ्ट ATAMDHARM के नाम से बनवाऐं। और कुछ न लिखावें।

(४) जिन सहयोगी भाइयों ने अभी तक आत्मधर्म के नये वर्ष के उनके द्वारा बनाये गये ग्राहकों की सूची हमें न भेजी हो वे कृपया अविलंब भेज दें।

(५) इस अंक के साथ आजीवन ग्राहकों की एवं जिन वार्षिक ग्राहकों ने अपना ग्राहक नंबर हमें लिख भेजा था, उनकी रसीदें भेजी जा रही हैं। सम्हाल लें। शेष ग्राहकों की रसीदें उनके ग्राहक नंबर ढूंढ़कर अगले माह के अंक के साथ भेजेंगे।

(६) हमारे पास अनेक मुमुक्षु मंडलों से पत्र आ रहे हैं, जिनमें लिखा है कि वे शीघ्र ही आत्मधर्म के ग्राहकों का चंदा एकत्र कर भेज रहे हैं। इस कारण हम इस बार तो सभी पुराने ग्राहकों को आत्मधर्म भेज रहे हैं, परंतु अगस्त का अंक उन्हीं सदस्यों को भेजा जा सकेगा जिनका चंदा हमें जुलाई के अंत तक प्राप्त हो जावेगा।

प्रवचनकार बंधुओं को अपूर्व अवसर

पर्यूषण या अन्य अवसर पर प्रवचनार्थ जानेवाले तथा मंडलों की दैनिक तत्त्वगोष्ठियों में प्रवचन करनेवाले प्रवचनकार बंधुओं को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि धर्माध्यापक और विद्वान तैयार करनेवाले अनेकानेक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों के पश्चात् प्रवचनकारों की प्रवचनशैली एवं संबंधित विषय के परिमार्जन के लिये पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में एक प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर भी अब सोनगढ़ में दिनांक ३१-८-७७ से १४-९-७७ तक लगाने का निर्णय लिया गया है।

समाज की आध्यात्मिक रुचि निरंतर बढ़ रही है, फलस्वरूप प्रवचनकारों की माँग भी बढ़ रही है। पर्यूषणादि पर्वों पर प्रतिवर्ष सैकड़ों प्रवचनकार प्रवचनार्थ जाते हैं तथा सारे भारतवर्ष के मंडलों में प्रतिदिन चलनेवाली सैकड़ों सभाओं में भी प्रवचन करते हैं। उनमें बहुत से प्रवचनकार बंधु ऐसे भी हैं, जिनको गुरुदेवश्री के साक्षात् श्रवण का लाभ वर्ष में १५ दिन भी नहीं मिल पाता है तथा बहुतों का अध्ययन भी सर्वांग नहीं है। फलस्वरूप वे जिनवाणी का मर्म, चारों अनुयोगों एवं नयकथनों की संधिपूर्वक व्यक्त नहीं कर पाते; इस कारण कभी-कभी समाज में तत्त्व के प्रति एवं सोनगढ़ के प्रति कुछ भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, फलस्वरूप तत्त्वप्रचार में वृद्धि के स्थान पर बाधाएँ उत्पन्न होने लगती हैं।

नयकथनों और चारों अनुयोगों का समन्वित ज्ञान देना एवं शैली को रोचक, सरल, सुबोध एवं सरस बनाना ही इस शिविर का उद्देश्य है। इसमें मात्र प्रवचनकार बंधु ही भाग ले सकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जा सके - इसके लिये सीमित लोगों को ही प्रवेश दिया जायेगा। प्रवेश-प्राप्त बंधुओं की भोजन एवं आवास व्यवस्था निःशुल्क रहेगी।

पूज्य स्वामीजी के दो समय के प्रवचनों एवं रात्रि चर्चा के अतिरिक्त दो घंटे प्रशिक्षण कक्षाएँ चलेंगी तथा एक घंटे प्रायोगिक शिक्षण दिया जायेगा। अध्यापन कार्य मुख्यरूप से डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल करेंगे। साथ में उच्चकोटि के प्रवचनकार सर्वश्री पंडित रामजीभाई, पंडित लालचंदभाई, पंडित खीमचंदभाई, पंडित हिम्मतभाई, पंडित बाबूभाई, युगलजी आदि के प्रवचनों का लाभ मिलेगा।

अतः समस्त प्रवचनकारों से एवं मुमुक्षु मंडलों से सानुरोध आग्रह है कि प्रवचनकारों के पधारने की सूचना निम्नलिखित पतों पर तत्काल देवें जिससे उनके लिये समुचित व्यवस्था की जा सके। ३१ जुलाई तक सूचना अवश्य आ जानी चाहिए।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ - ३६४२५०
जिला - भावनगर (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर
जयपुर - ३०२००४ (राजस्थान)

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पै०		रु० पै०
मोक्षशास्त्र	१२-००	मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
समयसार कलश टीका	६-००	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
प्रवचनसार	१२-००	मैं कौन हूँ?	१-००
पंचास्तिकाय	७-५०	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
नियमसार	५-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अष्टपाहुड़	१०-००	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार नाटक	७-५०	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग १	प्रेस में	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	अपने को पहचानिए	०-५०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और	
आत्मावलोकन	३-००	उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
श्रावकधर्म प्रकाश	प्रेस में	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
द्रव्यसंग्रह	१-५०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग १	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	प्रेस में
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
बालपोथी भाग २	प्रेस में	युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००	वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	(छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	
पंचमेरु नन्दीश्वर विधान पूजा	१-५०	सत्तास्वरूप	१-७०

* श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

* पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४